विद्युत् (बिजली) बादर तेजस्काय है

लेखक-
नेमीचन्द बांठिया

प्रकाशक
श्री अखिल भारतीय सुधर्म
जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राज.)
☎ : (०१४६२) २५१२१६, २५७६९९

सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का १११ वां रत्न

विद्युत् (बिजली) बादर तेजस्काय है

लेखक
नेमीचन्द बांठिया, ब्यावर

प्रकाशक
श्री अखिल भारतीय सुधर्म
जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राज.)
☎ : (०१४६२) २५१२१६, २५७६९९

नोटः सभी प्रसंगों का न्याय क्षेत्र **ब्यावर** ही होगा।

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ वल्लभचन्दजी सा. डागा, जोधपुर

प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, **जोधपुर**

२. शाखा-अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर**

३. महाराष्ट्र शाखा-माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल
आंबेड़कर पुतले के बाजू में, **मनमाड़** (नासिक) ☎ २५२५१

४. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन
पो० बॉ० नं० २२१७, **बम्बई-२**

५. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन ६७ बालाजी पेठ, **जलगांव**

६. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६**

७. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद**

८. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा**

९. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, **भीलवाड़ा**

१०. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी
साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**

११. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)

१२. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, २३३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ☎ ५३५७७५

मूल्य : ३-००

प्रथम आवृत्ति
५०००

वीर संवत् २५२८
विक्रम संवत् २०५८
नवम्बर २००२

मुद्रक-स्वास्तिक ऑफसेट प्रेम भवन-हाथी भाटा, अजमेर

निवेदन

श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने अपने निर्मल ज्ञान में जान कर और देख कर षट्जीवनिकाय सिद्धांत की प्ररूपना की। जीवों के छह निकाय हैं-१. पृथ्वीकाय २. अप्काय ३. तेउकाय ४. वायुकाय ५. वनस्पतिकाय और ६. त्रसकाय। उनमें पहले पाँच स्थावरकाय हैं एवं छठा त्रसकाय यानी गति करने वाले जीव। आचारांग सूत्र (प्रथम श्रुतस्कंध) में षट्जीवनिकाय का विस्तार से स्वरूप बतला कर उनकी रक्षा करने का प्रभु ने उपदेश फरमाया है। संसार में जितने भी एकेन्द्रिय प्राणी हैं उन सब में वनस्पतिकाय की अवगाहना सबसे बड़ी है, यानी १००० योजन झाझेरी है, शेष चार स्थावर की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवां भाग मात्र है, इसीलिये वनस्पतिकाय को "**दीर्घलोक**" कहा है। पर चूंकि तेजस्काय उन वनस्पतिकाय को भी जला डालती है, इसीलिये तेजस्काय को "**दीहलोगसत्थस्स**" दीर्घ लोक शस्त्र कहा है। अर्थात् अग्निकाय से बढ़ कर लोक में कोई शस्त्र नहीं है। इतना ही नहीं अग्निकाय के आरंभ में प्रभु ने छह ही काय की हिंसा होना फरमाया है। भगवती सूत्र श० ७ उ० १० में कालोदायी अनगार के पूछने पर प्रभु ने इस प्रकार उत्तर फरमाया है -

दो भंते! पुरिसा सरिसया जाव सरिसभंडमत्तोवगरणा अण्णमण्णेणं सद्धिं अगणिकायं समारंभंति, तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, एगे पुरिसे अगणिकायं णिव्वावेइ, एएसि

णं भंते! दोण्हं पुरिसाणं कयरे पुरिसे महाकम्मतराए चेव, महाकिरियतराए चेव, महासवतराए चेव, महावेयणतराए चेव? कयरे वा पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव, जाव अप्पवेयणतराए चेव? जे वा से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, जे वा से पुरिसे अगणिकायं णिव्वावेइ?

कालोदाई! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से णं पुरिसे महाकम्मतराए चेव, जाव महावेयणतराए चेव। तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं णिव्वावेइ से णं पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेयणतराए चेव।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-तत्थ णं जे से पुरिसे जाव अप्पवेयणतराए चेव?

कालोदाई! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से णं पुरिसे बहुतरायं पुढविकायं समारंभइ, बहुतरायं आउक्कायं समारंभइ, अप्पतरायं तेउकायं समारंभइ, बहुतरायं वाउकायं समारंभइ, बहुतरायं वणस्सइकायं समारंभइ, बहुतरायं तसकायं समारंभइ। तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं णिव्वावेइ, से णं पुरिसे अप्पतरायं पुढविक्कायं समारंभइ, अप्पतरायं आउक्कायं समारंभइ, बहुतरायं तेउक्कायं समारंभइ, अप्पतरायं वाउकायं समारंभइ, अप्पतरायं वणस्सइकायं समारंभइ, अप्पतरायं तसकायं समारंभइ, से तेणट्ठेणं कालोदाई! जाव अप्पवेयणतराए चेव।

भावार्थ - हे भगवन्! समान उम्र के यावत् समान भाण्ड-पात्रादि उपकरण वाले दो पुरुष, परस्पर एक दूसरे के साथ, अग्निकाय

का समारंभ करें। उनमें से एक पुरुष अग्निकाय को जलावे और एक पुरुष अग्निकाय को बुझावें, तो हे भगवन्! उन दोनों पुरुषों में से कौनसा पुरुष महाकर्म वाला, महाक्रिया वाला, महाआस्रव वाला और महावेदना वाला होता है और कौनसा पुरुष अल्प कर्म वाला, अल्प क्रिया वाला, अल्प आस्रव वाला और अल्प वेदना वाला होता है? अर्थात् जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह महाकर्म वाला आदि होता है, या जो पुरुष अग्नि काय को बुझाता है, वह महाकर्म वाला आदि होता है?

हे कालोदायी! उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पुरुष महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है और जो पुरुष, अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्प कर्म वाला यावत् अल्प वेदना वाला होता है।

हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष, अग्निकाय को जलाता है, वह महाकर्म वाला आदि होता है और जो अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्प कर्म वाला आदि होता है?

हे कालोदायिन्! उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष, अग्निकाय को जलाता है, वह पृथ्वीकाय का बहुत समारम्भ करता है, अप्काय का बहुत समारंभ करता है, अग्निकाय का अल्प समारंभ करता है, वायुकाय का बहुत समारंभ करता है, वनस्पतिकाय का बहुत समारंभ करता है और त्रसकाय का बहुत समारंभ करता है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह पृथ्वीकाय का अल्प समारंभ करता है, अप्काय का अल्प समारंभ करता है, वायुकाय का अल्प

समारंभ करता है, वनस्पतिकाय का अल्प समारंभ करता है, एवं त्रसकाय का अल्प समारंभ करता है। किन्तु अग्निकाय का बहुत समारंभ करता है। इसलिए हे कालोदायी! जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पुरुष महाकर्म वाला आदि है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्पकर्म वाला आदि है।

उक्त आगम पाठ में प्रभु ने अग्निकाय के आरंभ करने वाले पुरुष को पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय का बहुत आरंभ करने वाला और अग्निकाय का अल्प आरंभ करने वाला बताया है अर्थात् अग्निकाय के आरंभ में प्रभु ने छह ही काय की हिंसा होने का स्पष्ट उल्लेख किया है।

आचारांग सूत्र में जहा प्रभु ने छह काय का स्वरूप बतलाया वहाँ जैन धर्म के सर्वविरति साधु समाज के लिए पांच स्थावर जीवों की भी उसी प्रकार रक्षा-दया पालने का निर्देश दिया है, जिस प्रकार त्रस यानी चलते फिरते जीवों की रक्षा एवं दया का। जो जैन साधु नाम धरा कर त्रसकाय की तो रक्षा करता है पर शेष पांच स्थावर की रक्षा की उपेक्षा करता है तो वह भेष से भले ही साधु कहा जा सकता है पर भगवान् की आज्ञानुसार वह जैन साधु नहीं हो सकता। क्योंकि जैन साधु के लिए छहकाय जीवों की तीन करण तीन योग से रक्षा करना उनकी दया पालना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है।

विद्युत (बिजली) जो अग्नि ही नहीं बल्कि अग्नि का महापुंज है, जिसे आगम में नामोल्लेखपूर्वक बादर तेजस्काय निरूपित किया है, उसका कोई जैन साधु-साध्वी लौकेषणा के चक्कर में,

सुखशीलिया जीवन यापन करने के लिए अथवा जिन्हें अपने संयम की सुरक्षा एवं भगवान् की आज्ञा पालन से कोई सरोकार नहीं है, उपयोग करते हैं, तो वे भगवती सूत्र के उक्त पाठ के अनुसार मात्र अग्नि काय के जीवों के विराधक ही नहीं अपितु छहकाय जीवों के विराधक माने जायेंगे।

आज जिन्होंने जैन साधु साध्वी के वेश में बिजली द्वारा संचालित उपकरणों का उपयोग चालू कर रखा है, उनका संयमी जीवन क्या है, कैसा है, इसको स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। यह तो सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। बिजली संचालित उपकरणों का प्रयोग करने वाले इसके साथ सैकड़ों अनागमिक प्रवृत्तियों को जमाने की ओट का बहाना ले कर अपनाये हुए चल रहे हैं। इनके आचार-विचार, आहार विहार आदि किसी भी प्रवृत्ति का कोई अता-पता ही नहीं है। जिसके दिल में जो जच गई वह कर डालता है। हमारा समाज तो इस बिन्दु पर प्रायः मूक बना हुआ बैठा है, जैसे कि उन्हें अपने गुरु वर्ग के आचार विचार से कोई लेना देना ही न हो।

खैर, स्थानकवासी एवं मूर्त्तिपूजक समाज के अनेक संप्रदाय के साधु साध्वी विद्युत् (बिजली) संचालित उपकरणों का उपयोग वर्तमान में कर रहे हैं। तेरापंथ साधु समाज में आचार्यश्री कालुगणि जी तक विद्युत् (बिजली) संचालित उपकरणों का उपयोग नहीं होता था। उसे बादर अग्निकाय माना जाता था। उसके बाद इसका उपयोग यहाँ भी चालू हुआ। जिस तरह कई स्थानकवासी, मूर्त्तिपूजक के साधु साध्वी इसका उपयोग करते हैं उसी प्रकार

तेरापंथ समाज के साधु साध्वी उसका उपयोग कर ही रहे थे। यद्यपि इसका उपयोग अनागमिक है फिर भी अपनी निजी विचारणा एवं मान्यता से इनका उपयोग किया जाता रहा है। पर आज तक जैन धर्म के किसी भी आम्नाय के साधु साध्वियों ने यह कहने का न तो साहस किया और न ही सार्वजनिक घोषणा की, कि विद्युत् (बिजली) जिसका वे उपयोग कर रहे हैं, वे जैनागमों के अनुसार बादर अग्निकाय न होकर मात्र निर्जीव ऊर्जा है।

आचार्यश्री तुलसी जी द्वारा विद्युत् को अचित्त मान लेने पर भी उनकी मौजूदगी में एवं उनके देहावसान के इतने अंतराल तक विद्युत् (बिजली) के अचित्त (निर्जीव) होने का प्रचार-प्रसार नहीं किया गया। अब ऐसी कौनसी परिस्थिति आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी के सामने आयी कि आपको इसकी सार्वजनिक घोषणा (विशेष विज्ञप्ति १४-२० अप्रेल २००२) करने एवं व्यापक रूप से प्रचार प्रसार करने की आवश्यकता महसूस हुई और वह भी निस्संकोच, छाती ठोक कर इन शब्दों के साथ "**हमने चिंतन किया, खोज की, अनुसंधान किया, प्रमाण ढूंढे और इतने प्रमाण उपलब्ध किये आगम के, जिसके आधार पर यह स्थापना करने में हमें कोई संकोच नहीं हुआ, यह कोई संशय में नहीं किया अचित्त है या नहीं? अनुसंधान के आधार पर अच्छी तरह निश्चित हो गया कि यह मात्र पुद्गल है, शक्ति है, अग्निकाय जीव नहीं।**"

इस प्रकार आपने आगम प्रमाणों की दुहाई दे कर घोषणा तो कर दी, पर संपूर्ण विज्ञप्ति में आपने एक भी आगम प्रमाण के

दर्शन तक नहीं कराये। बिना आगम प्रमाणों के आगम प्रमाणों की अपनी विज्ञप्तियों में दुहाई देना, सर्वज्ञ प्रभु की वाणी की उत्थापना, अवहेलना तो है ही, साथ ही आपने अपनी इच्छानुसार आगम पाठों का विपरीत अर्थ कर उत्सूत्र प्ररूपणा कर डाली है, जो अक्षम्य अपराध की कोटि में आता है। आपकी इस घोषणा से सैकड़ों, हजारों ही नहीं बल्कि लाखों लोग जो सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु के वचनों में श्रद्धा रखते हैं (**तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणहिं पवेइयं** अर्थात्- तीर्थंकर प्रभु ने जो निरूपित किया वही सत्य और संदेह रहित है) उनकी आत्मा को घोर आघात पहुँचा है। साथ ही लाखों लोग आपकी इस विज्ञप्ति से भ्रमित हुए हैं। इतना ही नहीं स्वयं आपके तेरापंथ समाज ने इसके विरोध में विज्ञप्ति जारी की है जिसके वाक्यांश इस प्रकार है -

"आप बिजली को अचित्त, निर्जीव मान कर निश्चय में केवलग्यानी जाने परन्तु व्यवहार में आपने पहला मिथ्यात्वी गुणस्थान प्राप्त किया है। हमारे पूर्व आठ आचार्यों ने बिजली को सदा सचित्त एवं जीव सहित माना था एवं मानते थे। आज भी अस्सी प्रतिशत जैन संप्रदाय एवं जैन समाज बिजली को सचित्त जीव सहित मान रहे हैं तथा आपकी बात का विरोध कर रहे हैं। किसी भी वस्तु या पदार्थ में जीव है या नहीं, इसका न्याय तो सर्वज्ञ-वितराग प्रभु-केवलग्यानी ही कर सकते हैं। छद्मस्थ अवस्थावाले व्यक्ति को यह न्याय करने का कोई अधिकार नहीं है। अपनी सुख सुविधा के लिए सिद्धान्त के विपरीत परूपना करना ठीक नहीं है।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

(उद्धृत जैन श्वे० तेरापंथी भिक्षु अनुयायी श्रावक संघ कलकत्ता द्वारा प्रसारित विज्ञप्ति)

चूंकि आपने विद्युत् (बिजली) के निर्जीव होने की घोषणा सार्वजनिक विज्ञप्ति के माध्यम से एवं आगम की दुहाई दे कर की है। अतएव अब यह विषय आपकी संप्रदाय विशेष का निजी न हो कर सार्वजनिक एवं जिनवाणी (आगम) को चुनौती रूप होने से इसका सार्वजनिक समाधान आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य हो गया। इसी को मध्य नजर रखते हुए हमने आपकी संपूर्ण विज्ञप्ति को तेरह खंडों में विभक्त कर उसकी समीक्षा **''सम्यग्दर्शन पत्रिका''** के माध्यम से पांच अंकों (जुलाई २००२ से नवम्बर २००२) में की। जिसे अब पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। जिसमें सर्वप्रथम हमने आगम एवं ग्रंथों के मूल पाठों को जिनमें विद्युत् (बिजली) को नामोल्लेख पूर्वक बादर तेजस्काय बतलाया वे प्रस्तुत किये, इसके बाद मूर्धन्य आचार्यों एवं संतों के अभिमत, तत्पश्चात् विभिन्न वैज्ञानिकों के आशय जिसमें उन्होंने कृत्रिम विद्युत् (बिजली) को आकाशीय बिजली के समान कहा है। अंत में आचार्य श्री की मूल विज्ञप्ति देकर उनकी सिलसेलेवार समीक्षा की है।

इस पुस्तक में विद्युत् (बिजली) की सचित्तता के लिए जो आगम पाठ दिये हैं उसमें वीतराग वाणी को सम्मुख रखा गया है। बावजूद मेरी अल्पज्ञता के कारण अक्षरमात्र भी प्रभु वाणी के विपरीत प्ररूपणा हो गयी हो तो, उसके लिए अंतःकरण से

'मिच्छामि दुक्कडं' देता हूँ। वास्तव में वही सत्य एवं संदेह रहित है जो प्रभु ने अपने केवलज्ञान में देख कर निरूपित किया है।

इस पुस्तक के प्रकाशन का निमित्त आचार्य महाप्रज्ञ जी की दिनांक २० अप्रेल २००२ विज्ञप्ति बनी। जिसने जिसमें लाखों लोगों के हृदय को आघात पहुंचाया है, उसी के समाधान हेतु यह संक्षिप्त निबंध स्पष्टीकरण के रूप में प्रकाशित किया गया है, किसी भी महानुभाव की आत्मा को ठेस पहुँचाने की भावना से यह निबंध (समीक्षा) नहीं लिखा है। बावजूद मेरी इस समीक्षा (स्पष्टीकरण) से किसी की भी आत्मा को ठेस पहुँचे तो उसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। मात्र सैद्धांतिक मतभेद के अलावा मेरा किसी भी व्यक्ति विशेष के प्रति कोई विरोध नहीं है। सभी के साथ मैत्री भाव है।

'मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं ण केणइ॥'

इस पुस्तक के साथ अन्य तीन पुस्तकों (लोंकाशाह मत समर्थन, मुखवस्त्रिका सिद्धि और जैनागम विरुद्ध मूर्त्ति पूजा) के प्रकाशन के बारे में **धर्म प्रिय उदारमना श्रावक रत्न श्रीमान् वल्लभचन्दजी सा. डागा, जोधपुर** निवासी के सामने चर्चा की तो आपको अत्यधिक प्रसन्नता हुई। आपने चारों पुस्तकों के प्रकाशन का सम्पूर्ण खर्च अपनी ओर से देने की भावना व्यक्त की। मैंने आपसे निवदन किया कि फ्री पुस्तकें देने में पुस्तक की उपयोगिता समाप्त हो जाती है तथा उसका दुरुपयोग होता है। अतएव इन चारों पुस्तकों का दृढ़धर्मी प्रियधर्मी उदारमना श्रावक रत्न **श्रीमान् वल्लभचन्दजी सा. डागा, जोधपुर** के अर्थ सहयोग से अर्द्ध मूल्य में प्रकाशन किया जा रहा है। आदरणीय डागा साहब की

उदारता के लिए समाज पूर्ण रूपेण परिचित है। आप संघ की प्रवृत्तियों के लिए हमेशा उदारता से सहयोग प्रदान करने के तत्पर रहते हैं। साहित्य प्रकाशन में सहयोग प्रदान करने में आपकी भावना उत्कृष्ट रहती है। संघ एवं पाठक गण आपके इस सहयोग के लिए बहुत-बहुत आभारी हैं। आप चिरायु रहें और संघ और समाज को आपका सहयोग प्राप्त होता रहे।

विद्युत् (बिजली) जैनागमों के अनुसार बादर तेऊकाय है। इससे संबंधित जो भी तथ्य ध्यान में आये वे इस संक्षिप्त निबंध में देने का प्रयास किया गया है। सुज्ञ पाठक बंधु इस पुस्तक का आद्योपांत पठन करावें तथा समय समय पर जैन साधु साध्वियों के मध्य इसके (बिजली) सचित्ताचित्त का प्रसंग उपस्थित होने पर प्रमाण रूप में इन्हें पेश कर जिनशासन की रक्षा में सहयोगी बनें।

सभी धर्मानुरागी बंधुओं से नम्र विनति है कि वे अपने गुरुवर्ग को विद्युत् संचालित उपकरणों का उपयोग न करने का निवेदन कर सच्चे श्रमणोपासक होने की भूमिका अदा करे।

इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.)
दिनांक १-११-२००२

संघ सेवक
नेमीचन्द बांठिया
अ. भा. सु. जैन सं. र. संघ, जोधपुर

☆ ☆ ☆ ☆

विषय-सूची

नं०	विषय	पृष्ठ
१.	प्रस्तावना	१
२.	बिजली सचित्त अचित्त के बारे में बहुश्रुत पू० समर्थमल जी म. सा. का उत्तर	६
३.	आगम और ग्रन्थों के अनुसार विद्युत् (बिजली) बादर तेऊकाय है	११
४.	मूर्धन्य संतों के अभिप्राय	१४
	१. स्था० संप्रदाय के बत्तीस आचार्यों के अभिप्राय	१४
	२. आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा. का अभिप्राय	१५
	३. बृहत् साधु सम्मेलन का प्रस्ताव	१६
	४. पं० फूलचन्दजी म. सा. 'श्रमण' का अभिप्राय	१६
	५. पं० श्री सुदर्शनलालजी म. सा. का मत	२६
५.	आकाशीय और कृत्रिम बिजली की साम्यता	२८
६.	आचार्य महाप्रज्ञ जी की सार्वजनिक घोषणा की औचित्यता	३६
७.	विज्ञप्ति	३९
८.	समीक्षा	५२
९.	उपसंहार	१०७

संघ के प्रकाशन

क्रं. नाम	मूल्य
१. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४. अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५. अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६. अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७. अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८. अंतगडदसा सूत्र	१०-००
९. अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
१०. आचारांग सूत्र भाग १	२५-००
११. आचारांग सूत्र भाग २	२०-००
१२. आयारो	८-००
१३. आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
१४. उत्तरज्झयणाणि (गुटका)	६-००
१५. उत्तराध्ययन सूत्र	४५-००
१६. उपासक दशांग सूत्र	अप्राप्य
१७. उववाइय सुत्त	२५-००
१८. दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	३-००
१९. दशवैकालिक सूत्र	१०-००
२०. णंदी सुत्तं	३-००
२१. नन्दी सूत्र	अप्राप्य
२२. प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
२३-२९. भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
३०-३१. स्थानाङ्ग सूत्र भाग १-२	६०-००
३२. समवायांग सूत्र	२५-००
३३. सुखविपाक सूत्र	२-००
३४. सूयगडो	६-००
३५. सूयगडांग सूत्र भाग १	२०-००
३६. सूयगडांग सूत्र भाग २	२५-००
३७. मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००
३८. मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३९-४१.तीर्थंकरचरित्र भा० १,२,३	१३५-००

क्रं.	नाम	मूल्य
४२.	तीर्थंकर पद पाप्ति के उपाय	५-००
४३.	सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
४४.	आत्म साधना संग्रह	२०-००
४५.	आत्म शुद्धि का मूल तत्त्वत्रयी	२०-००
४६.	नव तत्त्वों का स्वरूप	१३-००
४७.	सामण्ण सड्ढिधम्मो	अप्राप्य
४८.	अगार-धर्म	१०-००
४९-५१.	समर्थ समाधान भाग १,२,३	५७-००
५२.	तत्त्व-पृच्छा	१०-००
५३.	तेतली-पुत्र	५०-००
५४.	शिविर व्याख्यान	१२-००
५५.	जैन स्वाध्याय माला	१८-००
५६.	स्वाध्याय सुधा	७-००
५७.	आनुपूर्वी	१-००
५८.	भक्तामर स्तोत्र	२-००
५९.	जैन स्तुति	६-००
६०.	मंगल प्रभातिका	अप्राप्य
६१.	सिद्ध स्तुति	३-००
६२.	संसार तरणिका	७-००
६३.	आलोचना पंचक	२-००
६४.	विनयचन्द चौबीसी	१-००
६५.	भवनाशिनी भावना	२-००
६६.	स्तवन तरंगिणी	५-००
६७.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००
६८.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१५-००
६९.	सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
७०.	सामायिक सूत्र	१-००
७१.	सार्थ सामायिक सूत्र	४-००
७२.	प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
७३.	जैन सिद्धान्त परिचय	३-००
७४.	जैन सिद्धान्त प्रवेशिका	४-००
७५.	जैन सिद्धान्त प्रथमा	४-००

क्रं.	नाम	मूल्य
७६.	जैन सिद्धान्त कोविद	३-००
७७.	जैन सिद्धान्त प्रवीण	४-००
७८.	१०२ बोल का बासठिया	०-५०
७९.	तीर्थंकरों का लेखा	१-००
८०.	जीव-धड़ा	२-००
८१.	लघु-दण्डक	२-००
८२.	महा-दण्डक	१-००
८३.	तेतीस-बोल	२-००
८४.	गुणस्थान स्वरूप	२-००
८५.	गति-आगति	१-००
८६.	कर्म-प्रकृति	२-००
८७.	समिति-गुप्ति	२-००
८८.	समकित के ६७ बोल	२-००
८९.	२५ बोल	३-००
९०.	नव-तत्त्व	७-००
९१.	जैन सिद्धान्त थोक संग्रह भाग १	१०-००
९२.	जैन सिद्धान्त थोक संग्रह भाग २	१०-००
९३.	जैन सिद्धान्त थोक संग्रह भाग ३	१०-००
९४.	जैन सिद्धान्त थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
९५.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
९६.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
९७.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	६-००
९८.	Saarth Saamaayik Sootra	10-00
९९.	सामायिक संस्कार बोध	७-००
१००.	प्रज्ञापना सूत्र भाग १	४०-००
१०१.	प्रज्ञापना सूत्र भाग २	४०-००
१०२.	प्रज्ञापना सूत्र भाग ३	४०-००
१०३.	प्रज्ञापना सूत्र भाग ४	४०-००
१०४.	चउछेयसुत्ताइं	१५-००
१०५.	जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग १	३५-००
१०६.	लोंकाशाह मत समर्थन	१०-००
१०७.	जिनागम विरुद्ध मूर्त्ति पूजा	१५-००
१०८.	मुख वस्त्रिका सिद्धि	३-००
१०९.	विद्युत् (बिजली) बादर तेजस्काय है	३-००

॥ णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

विद्युत् (बिजली) बादर तेजस्काय (अग्नि) है

१. प्रस्तावना

जैन धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकर भगवन्त माने गए हैं, जो अपनी उत्तम साधना के बल पर घाती कर्मों का क्षय कर वीतराग दशा प्राप्त करते हैं। वीतराग अवस्था प्राप्त करने के पश्चात् वे वाणी की वागरणा करते हैं और प्रथम देशना में चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं। वाणी की वागरणा के माध्यम से जिन सिद्धान्तों की वे प्ररूपणा करते हैं, वे सिद्धान्त अटल, ध्रुव, नित्य, शाश्वत, सत्य और त्रिकाल अबाधित होते हैं, यानी किसी काल एवं परिस्थिति में वे अपरिवर्तनीय होते हैं, छद्मस्थ व्यक्ति को उन सिद्धान्तों में किसी प्रकार की हेर फेर करने का कोई अधिकार होता ही नहीं है। अगर अपने निजी-चिंतन एवं वैज्ञानिकों के अनुसंधानों के आधार से, अपनी एवं जनता की सुख सुविधा के लिए अथवा लौकेषणादि के लिए वीतराग प्रभु द्वारा कथित सिद्धान्त के विपरीत कोई प्ररूपणा करता है तो वह अनंत तीर्थंकर भगवन्तों की आशातना करता है।

जहाँ तक वैज्ञानिकों के अनुसंधानों और उनके निर्णयों पर विश्वास का सवाल है, वे हमेशा अधूरे रहे और अधूरे ही रहेंगे। क्योंकि जिस वैज्ञानिक ने अनुसंधान कर किसी बात को प्रमाणित

किया, उसे ही दूसरा वैज्ञानिक अन्य खोज कर गलत साबित कर देता है। यही बात वर्तमान के चिंतनशील व्यक्तियों के लिए लागू होती है। उनका चिंतन भी वैज्ञानिकों की तरह बदलता रहता है।

हाँ, तो एक तरफ एक दो ही नहीं बल्कि हजारों लाखों वैज्ञानिक एवं लाखों छद्मस्थ धुरन्धर विद्वान मिलकर कोई अभिमत दें और दूसरी ओर सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु का सिद्धान्त यदि उस अभिमत को विपरीत बतलावे, तो उन लाखों वैज्ञानिकों एवं धुरन्धर विद्वानों के अभिमत का कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि जैन दर्शन चार ज्ञान, चौदह पूर्व के धारी साधकों के ज्ञान को भी सर्वज्ञ प्रभु के ज्ञान के सामने बिंदु के तुल्य मानता है , तो फिर वर्तमान के इन विद्वानों एवं वैज्ञानिकों का ज्ञान कितना बौना होगा, यह विचारणीय बिन्दु है।

दूसरी बात जैन धर्म के चतुर्विध संघ के घटक (साधु-साध्वी श्रावक श्राविका) के लिए पहली शर्त है कि वह **''तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं''** (जिनेश्वर भगवान् ने निरूपण किया है वही सत्य और संदेह रहित है) के सिद्धान्त को पूर्ण रूपेण स्वीकार करे। यदि वह प्रभु के सिद्धान्त को मानने में ननूनच करता है अथवा उनमें हेरफेर करने का दुःसाहस करता है तो उसे जैन कहलाने का कोई अधिकार नहीं।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर प्रभु महावीर ने छह काय जीवों की प्ररूपणा की है, उनमें पांच स्थावर (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय) एवं त्रस काय (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय) में जीव फरमाये हैं। पांच स्थावर काय में तेऊकाय (अग्नि) में प्रभु ने जीव बतलाए और इसके आरम्भ समारंभ को प्रभु ने आचारांग, भगवती आदि सूत्रों में छह ही काय का आरम्भ

समारम्भ होना फरमाया है। बिजली जिसका प्रचलन आजकल बहुत बढ़ गया है, जो बड़े-बड़े कारखाने जिनमें लोहें को पानी रूप बनाने जैसी भट्टियों से लगाकर छोटे मोटे उपकरणों को चलाने में कार्य आती है, उस बिजली को क्या सचित्त तेऊकाय (अग्नि) माना जाय अथवा मात्र ऊर्जा, इस पर विचारणा करना है ?

यद्यपि यह विषय कई दफा चर्चित हो चुका है, पुनः इसे चर्चित करने का प्रसंग क्यों बना ? तेरापंथी समाज के आचार्य श्री तुलसीजी जो बाद में गणाधिपति के रूप में प्रसिद्ध हुए उनके पूर्व तक उसके सभी आचार्यों ने बिजली को सचित्त तेऊकाय (अग्नि) मान कर बिजली के उपकरणों जैसे माईक, बल्ब, ट्यूब लाईट, पंखे आदि का उपयोग नहीं किया। आचार्य श्री तुलसी जी ने इसका उपयोग चालू किया। वर्तमान आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के लेखादि से ऐसा ज्ञात होता है कि बीदासर में आचार्य श्री तुलसी जी ने "बिजली को सचित्त तेऊकाय (अग्नि) न मानकर "निर्जीव ऊर्जा" मानी है। परिणाम स्वरूप आपके यहाँ साधु-साध्वी वर्ग में बिना किसी रोकटोक के इसका भरपूर उपयोग होने लगा है।

तेरापंथ धर्म संघ के संविधान के नीति निर्देशक तत्त्वों के अन्तर्गत संघ के आचार्य को यह अधिकार है कि वह जैसा चाहे अपने चतुर्विध संघ के आचार-विचार की कलमों में परिवर्तन कर सकता है। तदनुसार समय-समय पर इनके आचार्यों ने परिवर्तन किये। आचार्य श्री तुलसी जी के समय में तो अभूतपूर्व परिवर्तन हुए ही है। आपका संघ बिजली को सचित्त तेऊकाय (अग्नि) न मानकर अचित्त ऊर्जा मानते हुए इसका उपयोग करता है, यह आपके संघ की अपनी निजी व्यवस्था है। किन्तु अभी कुछ महीनों से तेरापंथ संघ के वर्तमान आचार्यश्री

महाप्रज्ञजी जहाँ कहीं भी पधारते हैं, वहाँ खुले में अभियान के रूप में इस विषय को लेकर खूब प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। इस संदर्भ के आपके प्रवचन लेखादि जो दैनिक समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में छप रहे हैं। वे हमारे पास अनेक स्थानों से आएं कि वस्तु स्थिति क्या है ? आगमिक आधार क्या है ? क्या बिजली को सचित्त तेऊकाय (अग्नि) मानना अथवा अचित्त ऊर्जा मानना? आदि आदि। आपके उक्त प्रचार-प्रसार से समाज में काफी ऊहापोह एवं गलतफहमी फैल रही है। अतएव समाज में फैली गलतफहमी को दूर करने के लिए यह लेख देने का प्रसंग बना। जिसमें आगमिक आधार एवं अन्य प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि बिजली सचित्त तेऊकाय (अग्नि) है न कि निर्जीव ऊर्जा।

तेरापंथ जैन संघ जिनशासन का अभिन्न अंग है, भले ही वैचारिक आचारिक मत भेद हो, जो प्रायः हुआ ही करते हैं। श्रद्धा अपनी अपनी अपने पास होती है, स्पर्शना लोगों में नजर जाती है, पर प्ररूपणा जब सार्वजनिक होती है और यदि वह प्ररूपणा आगम विरुद्ध हो तो समाज पर उसका बड़ा गलत असर होता है। बिजली सचित्त है, बादर तेऊकायिक जीवों का स्थान है, यह बात सम्पूर्ण जैन समाज जानता है और मानता है। सामायिक किया हुआ छोटा से छोटा बच्चा भी सामायिक में बिजली जलाता-बूझाता नहीं है, न ही उसको स्पर्श करता है। ऐसे सर्व स्वीकृत सर्वमान्य मुद्दे के लिए सार्वजनिक विपरीत प्ररूपणा करना कि बिजली तेऊकाय अग्नि नहीं बल्कि ऊर्जा है, कोई सामान्य बात नहीं है। क्योंकि ऐसे विषयों पर सार्वजनिक प्ररूपणा करने से चतुर्विध संघ के घटक (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका) की श्रद्धा डांवाडोल हुए बिना नहीं रहती। वर्तमान

हीयमान युग में शिथिलाचारियों को तो पैर टिकाव के लिए कुछ आधार चाहिए फिर तो वे इसका अनर्थ करने में पीछे रहने वाले कहां हैं? अतएव सार्वजनिक प्ररूपणा उन्हीं बिन्दुओं पर करनी चाहिए जो प्रभु वाणी के अनुरूप हो और चतुर्विध संघ के आचार-विचार को दृढ़भूत करता हो।

खैर, बिजली बादर सचित्त अग्नि है, इसके लिए आगमिक आधार क्या है, वैज्ञानिक आधार के बारे में तो अभी यहाँ मात्र डॉ० दौलतसिंह जी सा. कोठारी के विचार दिये जा रहे हैं, जो एक उच्च कोटि के वैज्ञानिक, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष थे एवं दिल्ली विश्व विद्यालय के कुलपति आदि कई उच्च पदों पर जिन्होंने कार्य किया, उन्होंने बतलाया कि **"विज्ञान सचित्त अचित्त की परिभाषा से नहीं सोचता। अतएव वैज्ञानिक दृष्टि से विद्युत को सचित्त अचित्त कहने का कोई अधिकार नहीं है। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि आकाश विद्युत और प्रयोगशाला की विद्युत ये दोनों एक है। यदि शास्त्रीय दृष्टि से आकाश की विद्युत सचित्त है तो प्रयोगशाला आदि की विद्युत भी सचित्त है। मैं तो इस मत का हूँ कि साधुओं को यह विद्युत (बिजली) का परिग्रह नहीं बढ़ाना चाहिए।"**

डॉ० साहब के मतानुसार यदि आकाश की चमकने वाली बिजली सचित्त है तो यह सामान्य काम में आने वाली बिजली भी सचित्त है। आकाश की बिजली सचित्त है, इसके लिए पन्नवणा सूत्र प्रथम पद का **"संघरिस समुट्ठिए"** "संघर्ष से उत्पन्न होने वाली" आकाश की बिजली को आगमकार ने सचित्त तेऊकाय (अग्नि) माना है, जिसे तो आचार्य प्रवर महाप्रज्ञ जी भी स्वीकार करते ही होंगे?

खैर बिजली सचित्त तेऊकाय (अग्नि) है, इसके लिए सर्व प्रथम हम आगम प्रमाण, स्थानकवासी आचार्यों का अभिमत, श्रमण संघ के प्रथम आचार्य पू० आत्मारामजी म. सा. का अभिप्राय, भीनासर सम्मेलन का प्रस्ताव आदि सामग्री उद्धृत करेंगे। इसके बाद अन्य वैज्ञानिक अभिमत जो बिजली को अग्नि मानते हैं देंगे, इसके पश्चात् आचार्य प्रवर श्री महाप्रज्ञ जी ने जो प्रमाण ऊर्जा के लिए दिये हैं उनकी औचित्यता पर विचारणा करेंगे।

२. बिजली सचित्त अचित्त के बारे में बहुश्रुत पू० समर्थमलजी म.सा. का उत्तर

बहुश्रुत पं. र. श्री समर्थमल जी म. सा. स्थानकवासी परम्परा के महान् विद्वान्, गीतार्थ संत हुए हैं, जिन्हें आगमों का परिशीलन, तलस्पर्शी अवगाहन था। स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु सम्मेलनों में आगम पक्ष का निर्वाह करने के लिए आपको आग्रह पूर्वक बुलाया जाता था। आप वहां पधार कर विधि पक्ष का निर्वाह करते हुए चर्चा में भाग लेते थे। आपके विशिष्ट आगमिक ज्ञान से प्रभावित होकर स्थानकवासी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के ही नहीं अपितु अन्य सम्प्रदायों के साधु-साध्वी के आगमिक प्रश्न समाधान के लिए आपके पास आते रहते थे। जिनका समाधान आप यथोचित आगम प्रमाणों से दिया करते थे। बिजली सचित्त अचित्त के बारे में भी आपके पास प्रश्न आया उसका आपने आगमिक आधार से जो उत्तर फरमाया वह यहाँ दिया जा रहा है -

प्रश्न - बिजली को (जो यंत्र से उत्पन्न होती है और जिससे प्रकाश होता है, ध्वनि-प्रसारण यंत्र में भी जिसका प्रयोग होता है तथा

पंखे आदि भी चलते हैं) कई साधु 'अचित्त' बतलाते हैं और आप 'सचित्त' मानते हैं, तो उसकी सचित्तता के आधार क्या हैं?

उत्तर - बिजली सचित्त तेऊकाय है। इस विषय में जिनागमों में निम्न उल्लेख मिलते हैं।

१. श्री पन्नवणा सूत्र प्रथम पद में 'तेऊकाय' के वर्णन में बादर तेऊकाय के अनेक भेद बतलाए, जिसमें 'बिजली' तथा 'संघर्ष से उत्पन्न होने वाली अग्नि' का भी उल्लेख है - **'संघरिस समुट्ठिए'** इसके बाद **''जे यावण्णे तहप्पगारा''** पाठ से वैसी ही अनेक प्रकार की अग्नियों का होना बतलाया है।

बिजली संघर्ष से उत्पन्न होती है। उपरोक्त आगम-पाठ से इसका समावेश ''संघरिस समुट्ठिए'' में होता है।

२. उत्तराध्ययन अ० ३६ में बादर अग्निकाय के भेद में **''विज्जू''** शब्द से बिजली को तेऊकाय में स्वीकार की है।

३. 'अभिधान राजेन्द्र' कोष पृ० २३४७ पर 'तेऊकाय' शब्द की व्याख्या में 'पिण्डनिर्युक्ति', 'ओघनिर्युक्ति', आवश्यक मलयगिरि, कल्प-सुबोधिका, बृहत्कल्पवृत्ति के उद्धरण दिये हैं, जिसमें अग्निकाय तीन प्रकार की बतलाई है - १. सचित्त २. मिश्र और ३. अचित्त।

सचित्त दो प्रकार की - १. निश्चय और २. व्यवहार।

निश्चय से सचित्त-ईंट की भट्टी, कुंभार की भट्टी इत्यादि भट्टियों के मध्य की अग्नि और **बिजली की अग्नि निश्चय सचित्त है।**

व्यवहार सचित्त-अंगारे (ज्वाला-रहित अग्नि) आदि।

मिश्र तेजस्काय में-मुर्मुर (चिनगारियाँ) आदि।

अचित्त तेजस्काय में-अग्नि द्वारा पके हुए भोजन, तरकारियाँ, पेय पदार्थ एवं अग्नि द्वारा तैयार की हुई लोहे की सूई आदि वस्तुएं

तथा राख, कोयला आदि अचित्त तेजस्काय है। **अचित्त की नामावली में बिजली का नाम नहीं है।**

४. श्री भगवती सूत्र श० ५, उ० २ के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि केवल सचित्त अग्नि के मृत-शरीरों को ही अचित्त अग्नि कहा है, बनावटी विद्युत आदि को नहीं।

५. भगवती श० ७, उ० १० में अचित्त प्रकाशक, तापक पुद्‌गल में केवल क्रोधाभिभूत साधु की तेजोलेश्या को लिया है, परन्तु बिजली को नहीं लिया।

६. सूयगडांग के दूसरे श्रुतस्कन्ध तीसरे अध्ययन में उल्लेख है कि- त्रस और स्थावर प्राणियों के सचित्त तथा अचित्त शरीरों में पृथ्वी, अप्, तेऊकाय आदि रूपों में, जीव पूर्वकृत कर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि बेटरी, दियासलाई और तांबे के तारों में सचित्त तेजस् उत्पन्न हो सकती है।

७. लोगों से मालूम हुआ कि अग्नि की ही तरह बिजली से भी भोजन बनाया जाता है, ज्वालाएं निकलती है, हवा गर्म होती है। जिस प्रकार कोयला, तेल आदि से अग्नि उत्पन्न कर मशीनें चलाई जाती है, उसी प्रकार बिजली से भी मशीनें चलाई जाती है। बिजली, मनुष्यों की मृत्यु का कारण भी बन जाती है, इससे बल्ब (गोले) और पंखे भी गरम हो जाते हैं। सभी प्रकार से देखा जाय तो **बिजली अग्नि का 'महापुंज' है और साधारण अग्नि से भी महान् कार्य करने वाली है, फिर इसे अचित्त कैसे मानी जाय?**

८. पृथ्वी, अप्, वायु और वनस्पति में अपनी-अपनी काय में, अपने ही भिन्न-भिन्न भेदों में भिन्न-भिन्न गुण स्वभाव और लक्षण है, उसी प्रकार अग्नि में भी स्वभाव में भिन्नता हो सकती है, **किन्तु बिजली अचित्त नहीं हो सकती।**

९. जब शास्त्रों में हाथ से, पत्ते के टुकड़े से, पंखे से और वस्त्र-पात्रादि से हवा की उदीरणा करने का निषेध है, हवा और अग्नि के आरम्भ को बहुत सावद्य, दुर्गति का कारण तथा इनका आरम्भ करने से निर्ग्रन्थता से भ्रष्ट होना बताया है, तब तेऊ, वायु के प्रबल आरम्भ यंत्र (जो प्रत्यक्ष में पशु, पक्षी आदि अनेक जीवों के घातक हैं) का उपयोग कैसे हो सकता है?

शास्त्रों में, तेजस्काय के वर्णन में स्थान-स्थान पर बिजली का उल्लेख है। **संघर्ष से उत्पन्न अग्नि बादर तेजस्काय मानी गई है।** केवल सचित्त अग्निकाय के मृत कलेवर को अचित्त अग्निकाय मानने का स्पष्ट उल्लेख है तथा **अग्निकाय और बिजली के समान गुण लक्षण व स्वभाव को देखते हुए बिजली सचित्त तेजस्काय ही है।**

शंका - बिजली में तेऊ के सूक्ष्म बादर जीव नहीं है, क्योंकि जब अग्नि में जलाने की शक्ति है तो लकड़ी को विद्युत क्यों नहीं जलाती है? बिना लकड़ी से उसके करण्ट से जलता है और जब लकड़ी हाथ में रहती है तब बच जाता है। इसका क्या कारण है?

समाधान - जैसे सचित्त अप्काय होते हुए भी सभी स्थानों का पानी सरीखा नहीं होता। किसी क्षेत्र का पानी सुपाच्य है, तो कोई दुपाच्य, किसी में दाल आदि पकती ही नहीं बाकुले जैसी रह जाती है। इसी प्रकार किसी पानी को अधिक भरपेट पीने पर मनुष्य एवं ढ़ोरों को विष चढ़ जाता है। किसी पानी को पीने से दस्तें शुरू हो जाती है, तो कोई पानी पुराने रोगों को दूर करके व्यक्ति को स्वस्थ बना देता है। इस प्रकार जैसे पानी अनेक प्रकार का होता है। उसमें परस्पर विरोधी गुण होते हुए भी सभी प्रकार का पानी सचित्त माना गया है। इसी तरह

अग्नि भी अनेक प्रकार की होती है कोई लकड़ी आदि को जलाती है तो कोई लकड़ी को नहीं जलाती। लेकिन बुझ जाती है तथा **कोई अग्नि बिना किसी प्रकार की वायु के संयोग से बढ़ती जाती है, जलती रहती है।** इस प्रकार परस्पर विरोधी गुणों को देखने से विद्युत को अचित्त नहीं कहा जा सकता। अनेक प्रकार के कास्टिक औषधियों वनस्पतियों आदि के प्रभाव से यह सामान्य अग्नि भी नहीं जला पाती। इसके प्रभाव से लोग जाज्वल्यमान खीरे हाथ में एवं मुख में रख लेते हैं। किन्तु इतने मात्र से वह अग्नि अचित्तं नहीं कही जा सकती। इसी प्रकार जब हम देखते हैं कि यह सामान्य अग्नि भी जिसका भोजन ही वनस्पति है। वह भी वनस्पति के प्रयोग से जलाना बंद कर देती है तो विलक्षण प्रकार की अग्नि विद्युत आदि काष्ठ संयोग से नहीं जलने मात्र से अचित्त कहना उचित नहीं है। जैसे माचिस की काड़ी लकड़ी पर रगड़ने से नहीं जलती, किन्तु माचिस की पेटी पर लगे मसाले पर रगड़ने से जलती है। यद्यपि माचिस की काड़ी लकड़ी पर रगड़ने से नहीं जलती किन्तु जलने के बाद उसमें लकड़ियां भी जल जाती है। इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि लकड़ी के स्पर्श से करन्ट रूक जाने मात्र से विद्युत को अचित्त मानना व्यावहारिक दृष्टि से भी उचित नहीं है। आगम में तो स्पष्ट रूप से विद्युत को अग्निकाय बताया है तथा पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि के अनेकों भेदों का निरूपण किया है। अतः विद्युत एवं सामान्य अग्नि के परस्पर कुछ भिन्नता दिखने पर भी हमें विद्युत को अचित्त नहीं मानना चाहिए। यही मान्यता आगमिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से उचित मालुम पड़ती है। वैज्ञानिकों का भी कथन है कि "जैसी आकाशीय विद्युत है उसी तरह कृत्रिम विद्युत को भी सचित्त मानना चाहिए।"

३. आगम और ग्रन्थों के अनुसार विद्युत् (बिजली) बादर तेऊकाय है

(१) प्रज्ञापना सूत्र पद १ में बादर तेऊकाय के लिए निम्न आगम पाठ आया है -

से किं तं बायर तेउक्काइया? बायर तेउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता। तंजहा-इंगाले, जाला, मुम्मुरे, अच्ची, अलाए, सुद्धागणी, उक्का, विज्जू, असणी, णिग्घाए संघरिस समुट्ठिए सूरकंत मणि णिस्सिए, जे यावण्णे तहप्पगारा।

भावार्थ - प्रश्न - बादर तेजस्कायिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - बादर तेजस्कायिक अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - **इंगाले** - अंगार-कोयलों की अग्नि, धूम रहित अग्नि। **जाला** - ज्वाला-संबद्ध अग्नि, अग्नि से जुड़ी हुई दीप शिखा। **मुम्मुरे** - मुर्मुर (राख से मिले अग्नि कण या भोभर)। **अच्वी** - अर्चि (अग्नि से पृथक् हुई ज्वाला या लपट)। **अलाए** - अलात-जलती हुई मशाल या जलती हुई लकड़ी। **सुद्धागणी** - शुद्ध अग्नि (लोहे के गोले की अग्नि)। **उक्का** - उल्का-रेखा सहित विद्युत्। **विज्जू** - विद्युत्-कृत्रिम बिजली। **असणी** - अशनि-विद्युत रहित अग्नि। **णिग्घाए** - निर्घात-कड़क युक्त विद्युत। **संघरिस समुट्ठिए** - संघर्ष समुत्थित (रगड़-घर्षण से उत्पन्न होने वाली अग्नि)। **सूरकंत मणि णिस्सिए** - सूर्यकांत मणि निःसृत-सूर्यकांत मणि से उत्पन्न होने वाली अग्नि और इसके अलावा अन्य इसी प्रकार की जो भी अग्नियाँ

हैं उन्हें बादर तेजस्कायिक समझना चाहिए। उपरोक्त आगम पाठ से स्पष्ट सिद्ध है कि विद्युत् (बिजली) बादर तेजस्कायिक है।

(२) जीवाजीवाभिगम सूत्र प्रथम प्रतिपत्ति में निम्न आगम पाठ आया है -

से किं तं बायर तेउक्काइया?

बायर तेउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - इंगाले जाले मुम्मुरे जाव सूरकंतमणिणिस्सिए, जे यावण्णे तहप्पगारा।

भावार्थ - बादर तेजस्कायिकों का क्या स्वरूप है?

बादर तेजस्कायिक अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - इंगाल-कोयले की अग्नि, ज्वाला, मुर्मुर की अग्नि यावत् सूर्यकांत मणि से निकली हुई अग्नि और अन्य भी इसी प्रकार की अग्नि।

प्रस्तुत मूल पाठ में **जाव** से निम्न आगम पाठ का ग्रहण हुआ है - **अच्ची** (अर्चि), **अलाए** (अलात), **सुद्धागणि** (शुद्धाग्नि), **उक्का** (उल्का), **विज्जू** (विद्युत्-आकाश में चमकने वाली बिजली और कृत्रिम बिजली।) **असणी** (अशनि), **णिग्घाए** (निर्घात), **संघरिस समुट्ठिए** (संघर्ष समुत्थित)।

जीवाजीवाभिगम सूत्र के उक्त मूल पाठ से भी विद्युत् (बिजली) बादर तेजस्कायिक है।

(३) उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३६ की गाथा नं० १११ में बादर अग्नि में विद्युत् शब्द का उल्लेख है। गाथा इस प्रकार है -

उक्का विज्जू य बोधव्वा, णेगहा एवमायओ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया॥१११॥

भावार्थ - उल्कापात की अग्नि और विद्युत् की अग्नि अर्थात् बिजली इस प्रकार अग्नि के अनेक भेद जानने चाहिए। वे सूक्ष्म

अग्निकाय के जीव, अनानात्व-नाना भेद-रहित एक ही प्रकार के कहे गये हैं।

(४) श्री शांति सूरिजी महाराज ने जीवविचार प्रकरण की गाथा ६ में "**उक्कासणिकणग विज्जुमाइया**" पाठ से बिजली को बादर तेऊकाय के रूप में कहा है।

(५) 'अभिधान राजेन्द्र' कोष पृ० २३४७ पर 'तेऊकाय' शब्द की व्याख्या में 'पिण्डनिर्युक्ति', 'ओघनिर्युक्ति', आवश्यक मलयगिरि, कल्प-सुबोधिका, बृहत्कल्पवृत्ति के उद्धरण दिये हैं, जिसमें अग्निकाय तीन प्रकार की बतलाई है -

तिविहो तेउक्काओ, सच्चित्तो मीसओ य अच्चित्तो।
सच्चित्तो पुण दुविहो, निच्छय-ववहारओ चेव॥४१॥

तेजस्काय तीन प्रकार की कही गयी है - १. सचित्त २. मिश्र और ३. अचित्त। पुनः सचित्त तेजस्काय के दो भेद हैं - १. निश्चय और २ व्यवहार।

निश्चय और व्यवहार सचित्त अग्नि के लिए कहा है -

इट्ठगपागाईणं बहुमज्झे विज्जुमाइ णिच्छयओ।
इंगालाई इयरो, मुम्मुरमाई य मिस्सो उ॥४२॥

निश्चय सचित्त अग्नि के अंतर्गत ईंट की भट्टी, कुमार की भट्टी इत्यादि भट्टियों के मध्य की अग्नि और बिजली की अग्नि निश्चय सचित्त अग्नि है।

व्यवहार सचित्त - अंगारे (ज्वाला-रहित अग्नि) आदि।

मिश्र तेजस्काय में-मुर्मुर (चिनगारियाँ) आदि।

अचित्त तेजस्काय के लिए निम्न गाथा दी है -

ओयण वंजणपाणग आयामुसिणोदगं च कुम्मासा।
मगलगसरक्खसूई, पिप्पलमाई उ उवओगो॥

- अग्नि द्वारा पके हुए भोजन, तरकारियाँ, पेय पदार्थ एवं अग्नि द्वारा तैयार की हुई लोहे की सूई आदि वस्तुएं तथा राख, कोयला आदि अचित्त तेजस्काय है। यहाँ **अचित्त की नामावली में बिजली का नाम नहीं है।** जब कि विद्युत् (बिजली) का निश्चय सचित्त अग्निकाय में नामोल्लेख किया गया है।

अचित्त अग्निकाय में मात्र अग्निकाय के मुकेलक यानी अग्नि से पक कर अचित्त हुई वस्तुएं राख, कोयला आदि ही लिए गए हैं।

प्रज्ञापना, जीवाजीवाभिगम, उत्तराध्ययन आदि के उपरोक्त आगम पाठों एवं जीव विचार प्रकरण, ओघनिर्युक्ति, पिण्ड निर्युक्ति, आवश्यक मलयगिरि आदि ग्रन्थों के पाठों से भी विद्युत् (बिजली) बादर तेजस्कायिक सिद्ध है।

४. मूर्धन्य संतों के अभिप्राय

१. स्थानकवासी संप्रदाय के बत्तीस आचार्यों के अभिप्राय

क्रॉन्फ्रेन्स के तात्कालिन मंत्री खीमचन्दजी बोहरा के हस्ताक्षरों से युक्त दिनांक २६-४-१९४७ को "जैन प्रकाश" में प्रकाशित विज्ञप्ति।

"साधु मुनिराज ध्वनिवर्द्धक यंत्र का उपयोग किन्हीं भी संयोगों में नहीं कर सकते तथा धर्मस्थान-उपाश्रयों में भी साधुओं के उपयोग के लिए नहीं रखे जा सकते। जैन साधुओं की जीवन चर्या पूर्ण रूप से

निवृत्ति प्रधान है। उन्होंने तीन करण तीन योग से आरंभ समारंभादि प्रवृत्तियों का त्याग किया है।

ध्वनि वर्द्धक यंत्र के संचालन में विद्युत शक्ति की आवश्यकता रहती है और विद्युत उत्पत्ति में छह काय की हिंसा होती है यह स्पष्ट है। इस दृष्टि से पंच महाव्रतधारी साधु अपनी मर्यादानुसार इस यंत्र का उपयोग न तो कर सकते हैं और न करने वालों को अनुमोदन भी दे सकते हैं।

इस प्रश्न के सम्बन्ध में **"कॉन्फ्रेन्स ऑफिस की तरफ से बत्तीसों ही सम्प्रदायों के आचार्यों के अभिप्राय मंगाये गये हैं। हमें यह बताते हुए हर्ष होता है कि सभी आचार्यों ने शास्त्रोक्त प्रमाणानुसार ध्वनिवर्द्धक यंत्र के उपयोग के लिए विरोध किया है।"**

२. आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा. का अभिमत

बिजली सचित्त अचित्त के बारे में शास्त्रज्ञ श्रमण संघ के प्रथम आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा. की विचारणा-

पू० आत्माराम जी म. सा. ने बड़ी खोज के बाद बिजली को सचित्त स्वीकार किया है। उनका लेख संवत् १९५५ के ज्येष्ठ शु० १५ को प्रकाशित रतलाम के **"निवेदन-पत्र"** में छपा है, उसकी कुछ संबंधित पंक्तियां इस प्रकार है - "विद्युत बिजली जिसका प्रयोग आजकल रोशनी और पंखे चलाने के लिए तथा अन्य कामों में हो रहा है उनके अचित्त या सचित्त होने के संबंध में जैन समाज में आजकल बड़ा विवाद चल रहा है। कोई इसे सचित्त कोई इसे अचित्त कह रहे हैं। कई वर्ष हुए पंजाब के कतिपय मुनियों ने इस पर विचार

किया तो यह निर्णय हुआ है'' यह कृत्रिम बिजली अचित्त प्रतीत होती है। उनके अनुसार हमने भी सेठ ज्वालाप्रसाद जी के द्वारा प्रकाशित दशवैकालिक सूत्र के अपने अनुवादों में ऐसा ही लिख दिया था। पश्चात् जब बिजली घरों में जाकर पुनः बड़ी खोज के साथ अन्वेषण किया गया तो यह निश्चित हुआ कि **''बिजली सचित्त है अचित्त नहीं''**।

३. बृहत् साधु सम्मेलन का प्रस्ताव

श्री वर्द्ध० स्था० जैन श्रमण संघीय बृहत् साधु सम्मेलन दिनांक १-४-५६ भीनासर के प्रस्ताव नं० १० ध्वनिवर्द्धक विषयक

''ध्वनिवर्द्धक यंत्र में बोलना मुनि धर्म की परम्परा नहीं है। यदि अपवाद में बोलना पड़े तो उसका प्रायश्चित्त लेना होगा किन्तु स्वच्छंद रूप से ध्वनि वर्द्धक यंत्र का प्रयोग नहीं करना चाहिये।'' प्रायश्चित्त हमेशा दोष सेवन का लिया जाता है।

बिजली सचित्त तेऊकाय है, इसके लिए स्थानकवासी परम्परा के अपने समय के कतिपय मूर्धन्य मनीषियों का अभिमत जो उन्होंने भगवती, पन्नवणा, उत्तराध्ययन सूत्रादि के मूल पाठ को उद्धृत कर दिया वह पाठकों के समक्ष रखा।

४. पू० श्री फूलचन्दजी म. सा. 'श्रमण' का अभिप्राय

बिजली सचित्त तेऊकाय है इसके लिए योगनिष्ट पं० मुनि श्री फूलचन्दजी म. सा. 'श्रमण' जो एक विद्वान् संत थे, आपने ध्वनि प्रसारक यंत्र के उपयोग में तेजस्काय जीवों की हिंसा सिद्ध करने के लिए **''तेजस्काय एक विवेचन''** नाम का एक निबन्ध लिखा, जो

"आचार्य आत्माराम जैन प्रकाशन समिति लुधियाना" से प्रकाशित हुआ, वह अक्षरशः यहा दिया जा रहा है।

मैं जैन मुनि व्रत की प्रतिज्ञा लेकर साधु समाज में प्रविष्ट हुआ हूँ, मैं प्राण-पण से प्रतिज्ञा पालन के लिए प्रस्तुत हूँ, प्रस्तुत रहूँगा। मैंने अहिंसा आराधना का महाव्रत धारण किया है, अहिंसा ही मेरी श्रद्धेय देवी है और इस देवी के दर्शन कराने वाले भगवान् महावीर ही मेरे देवता हैं। मेरे देवता की आज्ञा के अनुसार मैं क्या अन्तर्जगत् और क्या बाह्य जगत् सर्वत्र अहिंसा के दर्शन करना चाहता हूँ। मेरा वश नहीं चलता है, यदि मेरा वश चले तो मैं अचित्त पृथ्वी पर भी पैर न रखूं, मैं अचित्त वायु का श्वास-प्रश्वास के रूप में प्रयोग भी न करूँ, मैं अचित्त जल भी न पीऊँ और अचित्त आहार का भी सदा के लिए परित्याग कर दूँ।

मैं समझता हूँ जैनागमों में जो कुछ कहा गया है वह अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए कहा गया है, सचित्त एवं अचित्त के सभी विवेचन अहिंसा-प्रतिष्ठा की सुदृढ़ आधार भूमि है।

ध्वनि-विस्तारक यंत्र का बावेला

आजकल समाज में ध्वनि-विस्तारक यंत्र अर्थात् लाऊड स्पीकर के प्रयोग को आधार मान कर विद्युत् के सम्बन्ध में सचित्त-अचित्त का एक भयंकर बाबेला मचा हुआ है, कभी-कभी मुझे भी इस बाबेले का शिकार बनाने का यत्न किया जाता है, जबकि मैं इस बावेले से दूर ही रहना चाहता हूँ।

यह सत्य है कि कुछ भाई एवं मुनि यह कह कर मेरे सामने यह विवाद नहीं उठाते कि ये तो विद्युत् को सचित्त मानने वाले हैं। कुछ

ऐसे भी बन्धु हैं जो इसलिए मुझ से इस विवाद को दूर रखते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि मैं अचित्त के पक्ष में मत न दूँगा, तथापि कुछ ऐसे बन्धु भी हैं जो जिज्ञासा की दृष्टि से मुझे कुछ बोलने के लिए विवश कर देते हैं। मैं बोलना तो नहीं चाहता था, परन्तु मेरी विवशता मुझे कुछ लिखने का आग्रह कर रही है।

मैं सर्व प्रथम यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि ध्वनिविस्तारक यंत्र के प्रयोग करने वालों का मैं विरोधी नहीं हूँ, क्योंकि विरोध को मैं हिंसा का एक रूपान्तर मानता हूँ ✿, विद्युत् सचित्त ही है यह मेरा आग्रह भी नहीं है, किन्तु कुछ शास्त्रीय पक्ष स्पष्ट कर देने में मुझे कोई आपत्ति भी नहीं है।

आगमों में तेऊकाय और विद्युत्

शास्त्रीय परिभाषा में पृथ्वी आदि पाँच स्थावर जीवों में तेजस्कायिक जीवों की भी गणना की गई है और अनेकानेक युक्तियों द्वारा अग्नि को तेजस्कायिक सचित्त सिद्ध किया गया है।

वैदिक परम्परा में भी 'अग्निदेवता' कहा जाता है, देवता सचित्त ही तो होते हैं।

आगमकारों ने कहीं भी तेऊकाय (तेजस्कायिक) जीवों के लक्षण-उपलक्षणों पर प्रकाश नहीं डाला है, क्योंकि उनका लक्ष्य प्राणि-शास्त्र का निर्माण नहीं, अपितु अहिंसा की व्यापक प्रतिष्ठा रहा है, क्योंकि -

---

✿ मुनि श्री कदाचित् गृहस्थवत् सक्रिय विरोध को हिंसा बता रहे होंगे, अन्यथा मिथ्या प्रचार के विरुद्ध सत्य मन्तव्य प्रकट करके भ्रम को रोकना हिंसा नहीं है अपितु सत्य की रक्षा है। - सम्पादक

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेय पावगं॥

- दशवैकालिक

सभी संयमियों के लिए एक ही नियम है, पहले जीवों का ज्ञान और फिर उन पर दया। जिसे दयामात्र जीवों का ज्ञान नहीं वह दया क्या करेगा और वह पुण्य और पाप का क्या विवेक कर सकेगा?

इसलिए शास्त्र का लक्ष्य प्राणी-अप्राणी की परिभाषा नहीं, अपितु स्व और पर के भेद को मिटा कर "सर्वभूतहिते रतः" की भावना को जन्म देने वाली अहिंसा को सर्व-लोक-व्यापिनी बना देना ही उनका ध्येय है।

तेऊकाय के दो रूप

इन तेऊकाय जीवों के दो रूप हैं - सूक्ष्म और बादर अर्थात् स्थूल। प्रज्ञापना सूत्र में बादर तेऊकाय का विवेचन इस प्रकार किया गया है -

से किं ते बायर तेउकाइया? बायर तेउकाइया अनेगविहा पण्णत्ता, तंजहा - इंगाले (अंगारे), जाला (ज्वाला), मुम्मुरे (मुर्मुरा मींगनों की आग) अच्चि (लपटें) अलाए (मशाल की आग), सुद्धागनी (लोह-पिण्ड आदि में व्याप्त निर्धूम अग्नि) उक्का (उल्का अर्थात् चिनगारियां) विज्जु (विद्युत्) असणि (बादलों में चमक के साथ होने वाला प्रकाश) णिग्घाए (भयंकर शब्द के साथ उत्पन्न आग), संघरिस-समुट्ठिए (संघर्ष से उत्पन्न आग) सूरकंत मणि णिस्सिए (आतशी शीशे आदि से उत्पन्न आग), जेयावण्णे तहप्पगारा (और जिनका वर्णन नहीं किया जा सका ऐसे अन्य अनेक प्रकार के बादर तेउकाय जीव हैं)।

इस वर्णन को पढ़ने के अनन्तर यह तो किसी भी रूप में नहीं कहा जा सकता कि विद्युत् का और तेऊकाय का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं। सम्बन्ध है यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है।

विज्ञान पर विचार

प्रत्यक्ष-सिद्ध सत्य को मान कर आगमों को झुठलाने वाले विद्वानों से मेरा नम्र निवेदन है कि आगम-सिद्ध सत्य को प्रत्यक्ष में देख कर आगम-ज्ञान को न अपनाना भी तो महादोष है।

कहा जाता है कि अग्नि और विद्युत् के गुण-धर्म एक नहीं, इसलिए विद्युत् तेऊकाय नहीं। यह तर्क उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि संयमी मनुष्य और असंयमी मनुष्य के गुण-धर्म एक नहीं होते तो क्या वे मनुष्यत्वेन मनुष्य नहीं होते? अतः विभिन्न गुण-धर्म वाले भी तो एक जातीय हो सकते हैं। जैसे कुछ असमानताएं होते हुए भी संयमी और असंयमी दोनों मनुष्य हैं, ठीक उसी प्रकार विभिन्न गुण धर्मों के होते हुए भी विद्युत् और अग्नि दोनों तेऊकाय है क्योंकि प्रकाश और गति दोनों में समान गुण हैं। यदि अग्नि जलने योग्य पदार्थों को पाकर उन्हें जलाने के लिए स्वयं आगे बढ़ती जाती है तो जल का अंश पाकर विद्युत् भी आगे बढ़ती रहती है।

अफ्रीका के हब्शियों को यदि हम मानव मानते हैं तो इंगलैण्ड के गोरे भी तो मानव हैं, दोनों की वेश भूषा चिह्न भी भिन्न हैं, रंग रूप भी भिन्न हैं और दोनों भिन्न-भिन्न प्रदेशों के वासी हैं, परन्तु रंग भेद, चिह्न भेद और प्रदेश भेद उन्हें मानवता से वंचित नहीं कर देता। इसी प्रकार आगमों में अग्निकुमारों और विद्युतकुमारों में चिह्न भेद प्रदर्शित कर देने मात्र से दोनों में भिन्नता नहीं मानी जा सकती। यह तो भेद में अभेद और अभेद में भेद का प्रदर्शन मात्र है।

आज के वैज्ञानिकों ने यही तो सिद्ध किया है कि विद्युत् युक्त बादल होते हैं, जब विद्युत् युक्त बादल परस्पर पास आते हैं आकर्षण के कारण, तो दोनों के बीच में हवा में तनाव उत्पन्न हो जाता है उससे ध्वनि होती है, परन्तु आगमों में कहीं पर भी यह नहीं कहा गया कि विद्युत् गर्जती है, वे तो केवल विद्युत् को तेजस्काय का एक रूप मानते हैं। आगमों ने इलैक्ट्रोनों के प्रवाह को विद्युत् कहने में कोई आपत्ति नहीं की, आगम तो इतना ही कहते हैं कि इलैक्ट्रोनों के प्रवाह के रूप में विद्युत् हो या घर्षण जन्य विद्युत् हो, वह धन विद्युत् (पाजिटिव) हो या ऋण विद्युत् (नेगेटिव) हो, विद्युत् के समस्त रूप विद्युत् हैं जो तेजस्काय के ही एक प्रकार हैं।

विद्युत् दैवी प्रकोप और स्वाध्याय

विद्युत् एक देव-प्रकोप है, मैं इसे असत्य नहीं मानता हूँ। देव शब्द दिव् धातु से बना है जिसका अर्थ है चमकना। चमकने वाले तत्त्व का प्रकोप क्या नहीं होता है, संभवतः इस प्रकोप को वे ही देव प्रकोप न मानें जिन्होंने कभी किसी पर बिजली टूटती न देखी हो। जिसने बिजली गिरने से लोगों को मरते देखा होगा वे इसे देव प्रकोप ही मानेंगे।

जाने दीजिए देवी-प्रकोप को-आप कल्पना कीजिये कि आप स्वाध्याय कर रहे हैं, इतने में बादल छा जाएँ, बिजली चमकने लगे, बारम्बार भयंकर गड़गड़ाहट होने लगे तो क्या आप उस समय स्वाध्याय कर पायेंगे? क्या आपका मन स्वाध्याय में लगेगा? क्या पढ़ने के लिए जिस चित्त की एकाग्रता की अपेक्षा होती है, क्या वह उस समय रह जायेगी, क्या आप उस समय स्वाध्याय छोड़ कर वर्षा से सुरक्षा के साधन जुटाने की न सोचेंगे-यदि ऐसी अव्यवस्थित मानसिक दशा में

शास्त्र ने स्वाध्याय का निषेध कर दिया है तो वह भौतिक विज्ञान के अनुकूल भले ही न हो सके, परन्तु मनोविज्ञान के तो सर्वथा अनुकूल है, क्या आगमों को मनोविज्ञान के विषय में कहना निषिद्ध था, जब कि उनका आधार ही मनोविज्ञान है, भौतिक विज्ञान नहीं।

बिजली के बल्ब में वैकुम (Vacuum) सिस्टम का तर्क देकर विद्युत् को अग्नि तत्त्व से भिन्न कहना भी उचित नहीं, क्योंकि वह प्रणाली तो प्रकाश परिवर्धन की प्रणाली है, क्या हीटर खुली हवा में या आक्सीजन में जलने बन्द हो जाते हैं, क्या उन में दहन, प्रकाश और गति अवरुद्ध हो जाते हैं।

हम यूं कह सकते हैं कि विद्युत् तेजस्काय का वह रूप है जो स्वप्रकाश्य एवं स्वप्रदाह्य नहीं, अपितु तार आदि के संयोग से प्रकाश रूप में आ जाता है और प्रदाह्य भी बन जाता है। इसीलिए प्रज्ञापना सूत्र में विद्युत् की गणना बादर तेऊकाय में की गई है।

प्रज्ञापना सूत्र के निर्माता को जान पड़ता है यह भी ज्ञान था कि भौतिकतावादी मानव न जाने किस-किस रूप में अग्नि को अस्तित्त्व में लाएगा, अतः उसने "**जेयावण्णे तहप्पगारा**" - कह कर उस भावी विद्युत् का भी संकेत कर दिया है जिसके प्रयोग की आज चर्चा है।

एक दूसरा पक्ष

भारतीय धार्मिक परम्परा में जन-मानस को धर्म में प्रवृत्त करने की एक विशेष शैली भी है। जिस कार्य को समाज-निर्माता महर्षि समाज के लिए लाभकारी मानते थे, उसे वे धर्म का चोला पहना कर समाज के सामने प्रस्तुत करते थे। उपवास को ही लीजिये। उपवास भारत की अन्न-समस्या और जनवृद्धि की समस्या का समाधान है,

उपवास से अन्न की बचत और उपवास के साथ अनिवार्य ब्रह्मचर्य से जन-वृद्धि की समस्या का समाधान स्वभावतः हो जाता है और साथ ही शरीर की स्वस्थता और मन की पवित्रता भी उपवास से स्वभाव सिद्ध है।

ठीक उसी प्रकार समाज में अहिंसा के प्रचार के लिए अग्नि के विविध रूप प्रस्तुत कर समाज निर्माता महर्षियों ने समाज की अनेक प्रकार से होने वाली हिंसा से रक्षा की है।

अग्नि चाहे जिस रूप में भी जले, पर वह हिंसा का कारण तो बनेगी ही। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सभी रूपों में उससे जीव हत्या होगी ही।

विद्युत् हिंसा का मूल कारण है

विद्युत् स्वतः उत्पन्न नहीं होती, उसे उत्पन्न करने के लिए महान् यंत्रों का संचालन होगा ही और यंत्रों के चलने से हिंसा हुए बिना रह नहीं सकती। अहिंसाव्रती संयमी उसका उपयोग करके हिंसा का भागी बनेगा ही✪।

जल-प्रवाह से जनरेटरों और डायनुमों को घुमा कर विद्युत् उत्पन्न करते समय जल के भीतर चलने वाले पंखों से कितने जीव-जन्तु मरते हैं, यह जैन मुनि दिल पर हाथ धर कर सोचें तो अच्छा होगा।

ध्वनिविस्तारक यंत्र के संचालन के लिए एम्पलीफायर चलाना ही होगा, चलता हुआ एम्पलीफायर इतना गरम हो जाता है कि उसके नीचे के तार-जाल में विश्राम करते कितने ही कीट जल कर भस्म हो जाते हैं।

✪ परन्तु यंत्र प्रेमी मध्यममार्गी क्यों सोचने लगे? - सम्पादक

इस यंत्र के लाउडस्पीकरों के अन्दर भी जीव-जन्तु जा बैठते हैं, तीव्र ध्वनि क्या उनके लिए घातक नहीं होती?

पर-दुःख भी तो हिंसा ही है, क्या ध्वनि विस्तारक के प्रयोग से उत्पन्न तीव्र घोष विद्यार्थियों के अभ्यास में, रोगियों के आराम में और बालकों की सुखमयी नींद में बाधक होकर अहिंसा व्रत को खण्डित न करेगा ?

परिग्रह की जागृति

मान लीजिये विद्युत् अचित्त है और साधु-वर्ग को उसके उपयोग की छूट मिलनी चाहिये यह भी मान लिया जाए, तो ऐसी दशा में इस छूट के भयंकर परिणाम की ओर से हमें आंखें बन्द नहीं कर लेनी चाहिए ?

आज़ ध्वनि-विस्तारक यंत्र की छूट मिली इसलिए कि अचित्त विद्युत् का प्रयोग अदोष है तो फिर कल टेलीफोन के प्रयोग का नम्बर आयेगा ❖ वह भी अचित्त का ही प्रयोग है।

अब सर्दी में घास-फूस में सोकर त्याग वृत्ति के पालन में लीन बेचारे संयमी ठंड़ में क्यों ठिठुरें, अब उनकी प्रत्यक्ष विज्ञान समर्थिनी प्रवचनपटु प्रतिभा हीटर के प्रयोग का आग्रह करेगी, करे भी क्यों न अचित्त विद्युत् के प्रयोग में दोष क्या है?

अब खाना पकाने के हीटर प्रयोग में आने लगेंगे, क्योंकि वे भी तो तेऊकाय से बाहर अचित्त विद्युत् से ही संचालित हैं।

अब मुनिवर को गर्मी भी सतायेगी और वस्त्र की हवा का प्रयोग भी जिनके संयम और तप में बाधक है वे बिजली के पंखें चला

❖ अन्यत्र तो प्रयोग में आ भी चुका है। - सम्पादक

कर विश्राम करेंगे-अचित्त विद्युत् के द्वारा प्राप्त वायु भला संयम में बाधक क्यों बनेगी?

इस प्रकार धीरे-धीरे विद्युत् शक्ति से संचालित रेलों के प्रयोग की छूट भी मांगी जायेगी और भावी विद्युत् युग में जहाँ संसार के समस्त भोगों की जननी होने का गौरव विद्युत् माता को ही प्राप्त होना है वहाँ हमारा अपरिग्रही मुनिवर्ग भी उसी माता की गोद में बैठकर सुखानुभूति के स्वप्न देखने लगेगा?

सूत्रकृतांगसूत्र के रचयिता ने ठीक ही कहा है -

चित्तमंतमचित्तं वा, परिगिज्झ किसामवि।

अन्नं वा अणुजाणाइ, एवं दुक्खा न मुच्चइ॥

जब तक मनुष्य सचित्त-अचित्त पदार्थों में परिग्रह आसक्ति रखेगा, उसका अनुमोदन करेगा तब तक वह दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता।

समस्त विश्व के प्राणियों को अपरिग्रह का पाठ पढ़ाने वाले हमारे श्रद्धेय मुनि न जाने आगममार्ग से भटक कर क्यों प्रत्यक्षवाद के भयंकर जाल-जंजाल में फंस रहे हैं?

अंत में प्रत्यक्षवाद की बात को भी कह देना चाहता हूँ- प्रत्यक्षवादी फ्रायड़ ने कहा है कि जैसे प्यास लगने पर पानी पीना पाप नहीं, भूख लगने पर खाना पाप नहीं, नींद आने पर सोना पाप नहीं उसी प्रकार वासना जागृत होने पर उसका मिटाना भी पाप नहीं। बात प्रत्यक्ष सिद्ध भी है समस्त गृहस्थ वासना-तृप्ति में ही सुखानुभूति करते हैं। इसके विरुद्ध आगम ब्रह्मचर्य एवं संयम के उपदेश और आदेश देते हैं, जिनमें प्रत्यक्षतः दुःख ही दुःख है-बस छोड़ दीजिये संयम, ताक में रख दीजिये ब्रह्मचर्य को प्रत्यक्षवाद की जय-जयकार कीजिये।

अतः प्रत्यक्ष ही सब कुछ नहीं उससे ऊपर भी कुछ है, हमें उसे ही जानना है और उसी के लिए हमारी समस्त साधनाएं हैं।

यह मेरा वाचावीर्य नहीं-यह मेरी आत्मा का सत्य है जिसे मैंने प्रकट किया है-मेरा उद्देश्य परिग्रह और हिंसा से अपने आप को बचाना है और समाज को भी बचते रहने का पाठ पढ़ाना है यही मेरे मुनि जीवन की सार्थकता है।

चन्द्रलोक के प्रत्यक्ष दर्शन कर शास्त्रों को असत्य समझ लेने की गलती साधारण समाज कर सकता है, विद्वदत्वर्ग नहीं। चन्द्रलोक के हाथी घोड़ों की चर्चा मैं फिर करूँगा आज नहीं।

अतः मेरी दृष्टि में विद्युत् का प्रयोग मुनि जीवन में बाधक है, साधक नहीं।

५. पं० श्री सुदर्शनलालजी म. सा. का मत

'आत्म रश्मि' मार्च १९७९ वर्ष ३० अंक में पण्डित रत्न श्री सुदर्शन लालजी म. सा. ने लिखा है। उत्तराध्ययन के मूल पाठ में **"उक्का विज्जू य बोधव्वा"** अ० ३६ गाथा १११ में बिजली को सचित्त अग्निकाय स्पष्ट शब्दों में लिखा है तो अन्य टीका टिप्पणी को इसके विरोध में अवकाश ही नहीं रहता।

जिन्हें प्रभु की वीतरागता पर विश्वास है, जिनके लिए वीतराग वाणी का एक ही शब्द जो बिजली को सचित्त तेऊकाय सिद्ध करता है काफी है, लम्बे चौड़े आगम पाठ उनके लिए उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा वर्ग कभी भी वीतराग वाणी को बाह्य वैज्ञानिकादि मत मतान्तरों से तुलना नहीं करता है। उसकी वीतराग वाणी पर श्रद्धा **"तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं"** अर्थात् जिनेश्वर

भगवान् ने जो कहा वही सत्य और संदेह रहित है, तक ही सीमित नहीं होती अपितु इससे भी आगे बढ़कर उन भव्यात्मों के निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति हृदय से उद्‌गार निकलते हैं। "**सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं रोयामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं।**" हे भगवन्! हम निर्ग्रन्थ प्रवचन की अपूर्वता-सर्व श्रेष्ठता की प्रतीति (विश्वास-खातरी) करते हैं। इतना ही नहीं इससे आगे बढ़कर वे कहते हैं हे भगवन्! हम श्रद्धा प्रतीति के साथ अन्तर मन से उस पर रुचि भी करते हैं। वीतराग वाणी पर इतनी दृढ़ श्रद्धा, प्रतीति, रुचि की स्थिति में ही प्रभु ने सम्यक्त्व की प्राप्ति होना बतलाया है, तो फिर श्रावक और साधु के लिए वीतराग वाणी पर कितनी श्रद्धा, प्रतीति, रुचि हो इसका महज ही अंदाज लगाया जा सकता है। श्रद्धा बिना साधुपना और श्रावकपना जाली नोट के समान है। संसार में जाली नोट फिर भी चल सकता है, पर सर्वज्ञों की दृष्टि में नहीं।

वस्तुतः सैद्धान्तिक पक्ष इतना वज्र के समान सबल, सत्य एवं प्रामाणिक है कि इसके आगे वैज्ञानिकादि कोई भी प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं रहती। किन्तु जो पक्ष जिस वस्तु को हृदय से चाहता है, वह उसे छोड़ने को कतई तैयार नहीं होगा, उसके सामने चाहे कितने ही अकाट्य प्रमाण ही क्यों न रख दिये जाय। आगम प्रमाण से बिजली जब सचित्त तेऊकाय प्रमाणित है, तो विपक्ष बचाव के लिए कहने लगा कि यह आगमिक पक्ष तो आकाशीय विद्युत् से सम्बन्धित है, यंत्रोपयोग से उत्पन्न कृत्रिम बिजली के लिए नहीं है। अतएव कृत्रिम बिजली सचित्त तेऊकाय नहीं बल्कि अचित्त ऊर्जा है। किन्तु उनका यह कथन भी मिथ्या है क्योंकि आकाशीय (प्राकृतिक) बिजली और कृत्रिम बिजली की प्रकृति एक ही है।

५. आकाशीय और कृत्रिम बिजली की साम्यता

(१) ब्यावर में हुए कॉन्फ्रंस अधिवेशन के प्रसंग पर डॉ० दौलतसिंहजी कोठारी पधारे थे। पूज्य श्री नानालालजी म. सा. से उनका इस विषय में जो वार्त्तालाप हुआ, वह 'श्रमणोपासक' के २०-१०-७१ में छपा है, वह यहाँ उद्धृत किया जा रहा है -

"डॉक्टर सा. ने कहा कि आकाश की विद्युत और प्रयोगशाला की विद्युत दोनों एक है, आदि।"

"एक दिन रात्रि को भी विद्युत के विषय में फिर प्रश्न चल पड़ा। श्री सेठ चम्पालालजी बांठिया ने डॉक्टर कोठारी सा. के प्रश्न किया कि विद्युत सचित्त है या अचित्त।"

"डॉक्टर साहब ने उत्तर दिया कि विज्ञान सचित्त अचित्त की परिभाषा से नहीं सोचता, अतः वैज्ञानिक दृष्टि से विद्युत को सचित्त या अचित्त कहने का कोई अधिकार नहीं है। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि आकाश की विद्युत और प्रयोगशाला की विद्युत ये दोनों एक हैं। यदि शास्त्रीय दृष्टि से आकाश की विद्युत सचित्त है तो प्रयोगशाला आदि की विद्युत भी सचित्त है। मैं तो इस मत का हूँ कि साधुओं को यह विद्युत (बिजली) का परिग्रह नहीं बढ़ाना चाहिये।" इससे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि जो आगमिक-विधान प्राकृतिक बिजली पर लागू होता है, वह कृत्रिम बिजली पर भी लागू होता है।

(२) आकाश में चमकने वाली बिजली सेकण्ड के हजारवें भाग तक रहती है, लेकिन इसमें बड़ी शक्ति होती है। कहते हैं कि इस

बिजली की एक चमक में इतनी शक्ति होती है कि इससे एक घण्टे तक हजारों टेलिविजन चलाये जा सकते हैं! एक चमक की बिजली २५ हजार एम्पीयर से लेकर तीन लाख एम्पीयर तक होती है। इससे ६०-६० वाट के छह लाख बल्ब जलाये जा सकते हैं। इस भीषण बिजली से कभी-कभी जमीन में खाइयां बन जाती है, इसके मार्ग में आने वाले मकान, पेड़, बिजली और टेलिफोन के खंभे तथा चिमनियां नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है।

बिजली क्यों गिरी ?

सवाल है बिजली गिरी क्यों? बादलों से गिरने वाली बिजली को हम बिजली कहते हैं और अपने कमरे में जलने वाली बत्ती को भी हम बिजली कहते हैं। **तो क्या दोनों एक ही बिजली है। हाँ, एक ही है। फर्क इतना है कि एक प्राकृतिक बिजली है और दूसरी घर में जलने वाली, मानव द्वारा बनायी गयी बिजली है।**

बादलों के समूह

बिजली या गरज के बारे में बताने के पहले हम बादलों को समझ लें, क्योंकि यह बिजली बादलों से ही बनती है। वास्तव में बादल पानी की बूंदों के समूह हैं, लेकिन ये बूंदे आसमान में कैसे पहुँचती है? इन बूंदों को हवा समुद्रों और नदियों से अपने साथ उड़ा कर ले जाती है। इन बूंदों के समूह हमें आकाश में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। ये ही बादल हैं। मैदानों में ये बादल ऊँचे दिखाई देते हैं, लेकिन पहाड़ी स्थानों में ये कभी-कभी घर में घुस आते हैं और घर के सामान को गीला कर देते हैं।

बिजली की कड़क

जब हम बैटरी के दोनों तारों को पकड़कर आपस में मिलाते हैं तो उनके बीच से चिनकारी निकलती है। एक तार पर धन विद्युत् होती है और दूसरे पर ऋण। धन और ऋण विद्युत् एक दूसरे को खींचती है और धन तथा धन या ऋण तथा ऋण बिजली एक दूसरे से दूर भागती है। जब दो प्रकार की विद्युत् एक दूसरे के पास दौड़ती है तो चिनगारी छूटती है। जब बहुत से बादल वायु के वेग से आकाश में इधर-उधर दौड़ते हैं तो उनमें धन और ऋण विद्युत् पैदा हो जाती है। बड़े-बड़े बादलों पर विद्युत् की मात्रा अधिक हो जाती है। जब दो बादलों के धन और ऋण विद्युत् वाले कोने आमने सामने काफी निकट आ जाते हैं तो दोनों की धन और ऋण ✿ विद्युत् मिलने के लिए दौड़ पड़ती है। ये बीच की वायु में अपना रास्ता फोड़ लेती हैं और इस क्रिया में उनकी बहुत सी विद्युत् शक्ति अग्नि और प्रकाश में बदल जाती है। यह प्रकाश ही हमें बिजली की कौंध के रूप में दिखाई देता है और हम कहते हैं कि बिजली चमकती है।

जब दो बादलों के बीच चिनगारी दौड़ती है तो उनके मध्य की वायु अचानक अत्यन्त गर्म हो उठती है और वहाँ से भाग जाती है। उस स्थान पर शून्य-सा हो जाता है। जब चिनगारी समाप्त हो जाती है तो वायु इस शून्य को भरने के लिए सब ओर से दौड़ पड़ती है। चारों ओर से दौड़ती हुई वायु आकर चिनगारी के स्थान पर टकराती है। उनकी टक्कर से जो नाद उत्पन्न होता है, वही बिजली की कड़क है।

✿ बिजली के दौ तारों के मिलने से जैसी चिनगारी निकलती है, वैसी ही दो बादलों के मिलने से निकलती है। अर्थात् दोनों प्रकार की बिजली और उसके परिणाम समान है।

बिजली गिरती कैसे हैं?

आखिर बादलों में बनी बिजली पृथ्वी पर क्यों गिर पड़ती है और इतना नुकसान करती है? होता यह है कि जब किसी बादल का धन विद्युत् वाला या ऋण विद्युत् वाला सिरा पृथ्वी के निकटवर्ती धरातल पर ऋण विद्युत् उभर आती है। यह ऋण विद्युत् बादल की धन विद्युत् से मिलना चाहती है। वे मिलने को दौड़ पड़ती है। धरती और उस बादल के बीच में एक चिनगारी दौड़ जाती है। चमक दिखाई पड़ती है और कड़क सुनायी पड़ती है। यह चिनगारी जिस वस्तु के सम्पर्क में आती है, उसको अपनी महती शक्ति के कारण हानि पहुँचा देती है।

बिजली से रक्षा

आकाश से गिरने वाली बिजली से मकानों की रक्षा भी की जाती है। हमने देखा है कि ऊँची इमारतों में लोहे या तांबे की लम्बी छड़ इमारत में होती हुई जमीन तक गाड़ी जाती है। उसकी एक नोक इमारत की ऊपरी मंजिल पर निकली होती है। धातु में से होकर बिजली तेजी से दौड़ती है। जब धन विद्युत् वाले बादल का सिरा इमारत के ऊपर आता है तो पृथ्वी में ऋण विद्युत् उभरती है। यह ऋण विद्युत् धातु की छड़ में से होकर इमारत की चोटी से ऊपर चली जाती है और वायु में फैल जाती है। वायु में फैली यह ऋण विद्युत् बादल की धन विद्युत् के सम्पर्क में आती है और उसका निराकरण कर देती है। फिर बादल और पृथ्वी के बीच चिनगारी नहीं उठती और इमारत पर बिजली नहीं गिरती ⁕।

⁕ कुदरती बिजली तांबे या लोहे के तार में होकर चली जाती है, उसी

बिजली गिरने से रक्षा

बिजली गिरने से सैकड़ों आदमी हर साल मरते हैं। पेड़ों पर बिजली गिरती है और पेड़ों के नीचे शरण लेने वाले व्यक्ति मर जाते हैं। खुले मैदानों में बने किसी शेड़ में भी शरण लेना खतरनाक है। गरज के समय नदी या तालाब में नहाना या भीगे बदन बाहर आना भी खतरनाक है; क्योंकि भीगा बदन बिजली-चुम्बक का काम करता है।

बिजली की चमक के तापांश

बिजली की चमक का तापांश ५० हजार अंश फैरनहीट बताया जाता है। इससे धातु के तार, पाइप आदि इतने गरम हो जाते हैं कि वे भाप बनकर उड़ जाते हैं। टेलिफोन-लाइनों में रबड़ से ढके धातु के लट्टू जलकर खाक होते सुने गये हैं। लेकिन रबड़ का बाल बांका भी नहीं हुआ।

इसी प्रकार एक औरत का किस्सा वैज्ञानिक सुनाते हैं। यह औरत कड़क के समय अपने घर की खिड़की बंद कर रही थी। बिजली चमकी और उसका सोने का हार जल गया। केवल एक नीला छल्ला रह गया जो सोने का आक्साइड था। कमाल यह था कि औरत का बाल भी बांका नहीं हुआ।

(उद्धरित - नवभारत टाइम्स ११-२-६१ से)

(३) 'जन्मभूमि-प्रवासी' साप्ताहिक मुम्बई ता० १७-७-६०

प्रकार बनावटी बिजली भी धातु के इन तारों में प्रवेश करती है। वह भी हरे पेड़, पानी से गीली लकड़ी आदि में प्रवेश करती है। तात्पर्य दोनों का स्वभाव समान है। जब बादलों से उत्पन्न बिजली को आगमों के आधार से सचित्त माना गया, तो फिर बनावटी बिजली को भी सचित्त मानने में कोई बाधा होनी ही नहीं चाहिये।

ना रोजना अंक मां 'विज्ञाननां वहेण' कॉलममां नीचे मुजब छपाअेल छे.

प्रश्न - माणस पर वीजली पडे त्यारे शी असर थाय छे?

उत्तर - ते जाणवा घरमां वीजली ना तार ने अडी जवाथी शी असर थाय छे ते समजवुं जोइअे दरेक माणस (अने प्राणी) वीजली ना प्रवाह नुं अमुक प्रमाण सहन करी शके छे. तेथी वधु प्रमाणमां प्रवाह शरीरमां दाखल थाय त्यारे ज्ञान तंतुओ तेनो सामनो करवा प्रयास करे छे। अने शरीरनो जे भाग वीजली ने स्पर्श करतो होयं तेने दूर फैंकवा स्नायुओ उत्तेजित थई ने प्रयास करे छे। तेने आपणे वीजली नो आंचको लाग्यो अेम कहीअे छीअे। ज्ञान तंतुओ सहन करी शके के सामनो करी शके तेना थी प्रवाह नुं प्रमाण वधारे होय तो ज्ञान तंतुओ हारी जाय छे, खोटा पडी जाय छे अने स्नायुओ जकडाई जाय छे तेने आपणे अेम कहीअे छीअे के माणस वीजली थी चोटी रह्यो। तेथी मृत्यु नीपजे छे कारण के वीजलीनो प्रवाह तेना शरीरमां थई ने धरती मां सतत उतर्या करे छे।

आकाशनी वीजली अने घर वपराशनी विजली अेकज छे। पण आकाशी वीजलीमां भयंकर दबाण होय छे। आपणा घरमां तार धसावा थी तणखो थाय छे पण अे वीजलीनुं दबाण मात्र २५० वोल्ट होय छे तेम छतां ते जीवलेण नीवडे। पण आकाशी वीजली उत्पन्न करनार वादल मां दस करोड वोल्ट जेटलुं पण दबाण होय छे।

आवी भयंकर वीजली कोई माणस के प्राणी पर पड़े तो तत्क्षण तेना स्नायुओ अने ज्ञानतंतुओ नो नाश करीने तेना शरीर द्वारा धरती मां उतरी जाय वली वीजली ना भडकामां भयंकर गरमी होय छे। तेनी

आसपास नी हवानुं उष्णता मान २७ हजार अंश फेरनहाईट सुधी वधी जाय? पण ते अत्यंत अल्प समय माटे। आथी जे प्राणी पर वीजली पडे ते भस्मीभूत न थई जाय पर कालुं पडी जाय।

नोट - ऊपर ना लेख थी हुँ स्थानकवासी जैन मुनिवरो जेओ आकाशनी वीजली अने घर वपराशनी वीजली बंनेने जुदी गणी आ वीजली ने अचेत गणे छे तेमनुं नम्रपणे ध्यान खेंचुं छुं के विज्ञाननो अभिप्राय पण बंने वीजली अेक होवानो छे. तेनी नोंध लेवी जरुरी छे।

अहीं वीजली पाणी ना घोघना संघर्ष थीज उत्पन्न करवां मां आवे छे तो आकाशमां पण ते मुजबज बे अगर तेथी वधु वादलो जे पाणीना समूह थी भरपूर छे तेना परस्पर अथडावाथी-घर्षण थीज वीजली उत्पन्न थाय छे।

आकाशनी वीजली अने घर वपराशनी वीजली बंनेनुं उत्पत्ती स्थान पाणीज छे पछी बंनेमां भिन्नता केम होई शके?

अेक प्रत्यक्ष दाखलो वीचारीअे-

१. सचेत अग्निनो दीवो अने वीजलीनो दीवो २. अेक सांचु फूल अने अेक बनावटी फूल।

हवे बनावटी फूल गमे तेवुं आकर्षक रंगीन हशे छतां भ्रमर कदीपण तेना तरफ आकर्षाशे नही त्यारे सांचो फूल पर भ्रमर कुदरती आकर्षाशे। तेज न्याय अनुसार वीजली नी बत्ती अचेत होय, बनावटी होय, तो तेना पर पतंगी आ फूंदा तेमज तेवा प्रकार ना जीवो तेना पर आकर्षण थी कदी पण (बनावटी फूल पर न आवे तेम) न आववा जोइअे। उलटु वीजली नी बत्तीओ पर पतंगीआ सामान्य फानस नी अग्नि करतां वीशेष आवता आपणे प्रत्यक्ष जोइअे छीअे। माटे आ प्रत्यक्ष प्रमाण साबित करे छे के वीजलीनी अग्नि सचित छे जो अचेत होत तो तेना पर पतंगीआ फूंदा कदी पण न आवत।

विज्ञानी अभीप्राय अने प्रत्यक्ष प्रमाण आ बंने रजु करवामां आवेल छे। हुं खास करीने पंजाबना विद्वान् मुनीवरो ने वीनती करीश के आप आ वीजली ने अचेत मानो छो तो आप ऊपर नी बंने बाबतो नी विरुद्ध अचेतना प्रमाण रजु करशो तो ते पर विशेष विचारो ने अवकाश मलशे।

आगमिक एवं वैज्ञानिक प्रमाणों के अलावा प्रत्यक्ष में भी हम देखते हैं कि ईधन आदि की अग्नि की तरह बिजली की अग्नि से वे सारे कार्य संपन्न होते हैं जो ईंधन की अग्नि से होते हैं। यदि कहीं फ्यूज जल जाय तो ज्वाला भी निकलती है, कई मकानों में इससे आग भी लगती है। फ्यूज जलने की जगह देखें तो वहां राख जैसा रंग दिखाई देता है। इसकी दाहक शक्ति साधारण ईंधन की आग से भी अधिक होती है।

बिजली सचित्त तेऊकाय है, इसके लिए आगम ग्रन्थों के मूल पाठ, स्थानकवासी परम्परा के मूर्धन्य मनीषियों के अभिमत जो आपने आगम के प्रमाण के साथ दिए, वे पाठक बंधुओं के समक्ष रखें। जिनकी सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु के वचनों पर श्रद्धा है, विश्वास है, उनके लिए तो आगम प्रमाण देने के बाद वैज्ञानिकादि अन्य कोई भी प्रमाण देने की आवश्यकता ही नहीं रहती, बावजूद इसके कुछ वैज्ञानिक अभिमत जो आकाशीय बिजली और कृत्रिम बिजली को समान बताने वाले हैं वे यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं। इतने सुदृढ़ एवं स्पष्ट प्रमाण विद्युत् (बिजली) की सचित्तता के लिए उपलब्ध है बावजूद इसके आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने इसकी निर्जीवता के लिए जो विज्ञप्ति जारी की वह कितनी अनुचित एवं अनागमिक है इसकी समीक्षा हम आगे करने जा रहे हैं।

८. आचार्य महाप्रज्ञ जी की सार्वजनिक घोषणा की औचित्यता

बंधुओ! छद्मस्थ जीव चाहे वह गृहस्थ हो अथवा सर्व विरति संयमी साधक क्षयोपशम की विचित्रता के कारण समझ, विचार एवं धारणा आदि में अन्तर होना स्वाभाविक है, यह सदा से होता आया है। यदि वह अन्तर, आध्यात्मिक बिन्दु से सम्बन्धित है तो उस अन्तर को मिटाने के लिए मार्ग है -आप्त पुरुष स्वयं अथवा उनके वचन रूप आगम वाणी। इनके द्वारा समाधान करके संशय को मिटाया जा सकता है। जैसे गणधर भगवन्त इन्द्रभूतिजी और श्रमणोपासक आनंदजी का अवधिज्ञान विषयक मतभेद भगवान् के निर्णय से मिटा। द्वितीय गणधर श्री अग्निभूतिजी और तृतीय गणधर श्री वायुभूति जी के मत का अन्तर भगवान् के निर्णय से मिटा (भगवती श० ३ उद्देशक १) अतिमुक्तक श्रमण विषय स्थविरों के मन का संदेह भगवान् ने दूर किया (भगवती श. ५ उ० ४) और श्रमणोपासक शंखजी के प्रति पुष्कलीजी आदि का संदेह भगवान् ने दूर किया (भगवती श० १२ उ० १)। आज हमारे समक्ष आप्त पुरुष तो नहीं हैं, पर उन आप्त भगवन्तों द्वारा प्ररूपित आगम रूप वाणी आज भी हमारे पास मौजूद है जिसके आधार से सैद्धान्तिक विषयों पर आज भी समाधान हो सकता है।

विद्युत (बिजली) का विषय ऐसा नहीं जिसका समाधान वर्तमान उपलब्ध आगमों में नहीं हो। इसे तो नामोल्लेख पूर्वक आगमकार ने स्पष्ट बादर तेऊकाय बतलाया है। फिर इसे आगम की दुहाई देकर अचित्त ऊर्जा की सार्वजनिक घोषणा करना क्या यह आगम की अवमानना नहीं है?

नमस्कार महामंत्र के तीसरे पद पर प्रतिष्ठित एवं तीर्थंकर भगवंत के धर्मशासन की परम्परा के उत्तराधिकारी कहलाने वाले आचार्य भगवन्त कोई भी जाहिर घोषणा एवं प्रचार-प्रसार उसी विषय का करते हैं, जिससे चतुर्विध संघ में ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हो अथवा संघ पर कोई संकटादि आया हो, उससे उबारने के लिए अथवा उससे सावधान करने के लिए सार्वजनिक विज्ञप्तियाँ जाहिर की जाती है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी को क्या वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्युत् को अचित्त ऊर्जा का ही विषय इतना महत्त्वपूर्ण लगा जिसकी सार्वजनिक घोषणा एवं प्रचार-प्रसार की आवश्यकता महसूस हुई? इसके अलावा ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि आदि का क्या आपके पास कोई मुद्दा था ही नहीं? जिस साधन (विद्युत्) का उपयोग जैन संस्कृति को पतन की ओर धकेलने वाला है, दुराचार का पोषण करने वाला है, श्रमण वर्ग में जिसके उपयोग से हुए दुष्परिणाम समाज के सामने प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं, ऐसे पतन की ओर धकलने वाले, संयम साधना को नष्ट भ्रष्ट करने वाले मुद्दे की सार्वजनिक घोषणा के पीछे चतुर्विध संघ को क्या आध्यात्मिक लाभ होने वाला है इसको तो आप स्वयं ही जान सकते हैं? इसकी सार्वजनिक घोषणा करने से पूर्व तेरापंथ संघ के प्रवर्तक आचार्य भीखणजी की त्यागमय परम्परा का तो आचार्य महाप्रज्ञ जी को कुछ ख्याल करना चाहिये था। मात्र आधुनिकता के बहाव एवं अपनी सुख-सुविधा के लिए अपनी परम्परा के उल्लंघन एवं आगम का अपनी इच्छा अनुसार अर्थ लगाना क्या योग्य है?

तेरापंथ संघ के श्रमण वर्ग में विद्युत् (बिजली) से संचालित अनेक उपकरणों का उपयोग काफी समय से प्रचलित है। चूंकि यह

आपके संघ की आन्तरिक व्यवस्था है। इसलिए इस पर किसी को टीका टिप्पणी करने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। किन्तु जब इस विषय को विज्ञप्ति के रूप छपवा कर अभियान के रूप में प्रचारित-प्रसारित किया जाने लगा और वह भी आगम की दुहाई के साथ, तो फिर यह विषय आन्तरिक न होकर समाजव्यापी हो गया है। इतना ही नहीं आगम वाणी पर श्रद्धा रखने वाले सम्पूर्ण जैन समाज के लिए चुनौती हो गई है। अतएव समाज में फैल रही ऊहापोह, जिनवाणी की अवज्ञा को ध्यान में रखते हुए, इसका सार्वजनिक समाधान आवश्यक हो गया है। इसी को मध्यनजर रखते हुए इस लेखमाला को चालू किया। जिसका निमित्त बना आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी की विशेष विज्ञप्ति।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी ने "विद्युत् सचित्त या अचित्त?" शीर्षक से अपने विचार "विज्ञप्ति (साप्ताहिक)" वर्ष ७ अंक ५२ दिनांक १४-२० अप्रैल २००२ नाम के पत्र में प्रकाशित किये जो बायतु (बालोतरा) से प्रकाशित हुआ। इसके बाद इसका गुजराती अनुवाद अहमदाबाद से दैनिक एवं अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया। आपने जिन आधारों का उल्लेख कर विद्युत् (बिजली) को बादर सचित्त तेऊकाय की जगह अचित्त ऊर्जा करार दिया है, वे आधार कितने उचित एवं जिनवाणी (आगम) के अनुरूप हैं। इसकी समीक्षा हम आचार्य श्री की विज्ञप्ति को अंशों में बांट कर क्रमशः पाठकों के समक्ष रखेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि सुज्ञ पाठक वर्ग को आचार्य महाप्रज्ञ जी की मूल विज्ञप्ति की जानकारी हो, ताकि वह आचार्य श्री की विज्ञप्ति की औचित्यता पर की गई समीक्षा को सुगमता से समझ सके। अतएव सर्व प्रथम हम आचार्य श्री की मूल विज्ञप्ति यहाँ उद्धरित कर रहे हैं।

७. विज्ञप्ति

तेरापंथ की केन्द्रीय गतिविधियों का सर्वाधिक लोकप्रिय साप्ताहिक मुखपत्र

विज्ञप्ति (साप्ताहिक) वर्ष ७ अंक ५२ बायतू १४-२० अप्रैल २००२

विशेष प्रवचन

विद्युत् : सचित्त या अचित्त?

आचार्य महाप्रज्ञ

भगवान् महावीर का भारतीय दर्शन को एक मौलिक अवदान है-षड्जीवनिकाय का सिद्धान्त। जीवों के छह निकाय हैं-पृथ्वीकाय, अप्काय, तैजसकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। इनमें पहले पांच स्थावरकाय हैं। त्रसकाय गतिशील हैं। स्थानांग सूत्र में बतलाया गया है - पांच स्थावरकाय परिणय और अपरिणत-दोनों प्रकार के होते हैं, सचित्त और अचित्त-दोनों प्रकार के होते हैं। पृथ्वी सचित्त-सजीव भी होती है, अचित्त-निर्जीव भी होती है। जल सजीव और निर्जीव दोनों प्रकार का होता है। पानी बरसता है, वह सारा सचित्त है, ऐसा नहीं है। यह अचित्त भी हो सकता है, पर हमें पता नहीं लगता। अग्नि और वायुकाय भी सचित्त और अचित्त दोनों प्रकार की होती है।

एक नियम है-शस्त्र परिणत होने पर सचित्त अचित्त बन जाता है। सजीव, निर्जीव बन जाता है।

हमें विद्युत् के प्रश्न पर विचार करना है। विद्युत् सचित्त है या अचित्त?

आज बिजली का प्रयोग बहुत होता है। पूज्य गुरुदेव के शासनकाल में चिन्तन चला कि बिजली सजीव है या निर्जीव? पूज्य गुरुदेव वीदासर में विराज रहे थे। वहीं तीन दिनों तक हजारों व्यक्तियों के बीच चिन्तन चला। पक्ष-विपक्ष में बहुत से तर्क आए। आखिर निर्णय हुआ कि बिजली सजीव नहीं है। बिजली ऊर्जा है, जीव नहीं है, इस आधार पर विद्युत् को निर्जीव माना गया। आखिर आधार क्या है? आधार दोनों हैं। आगम का आधार है। उसमें भी बिजली निर्जीव सिद्ध होती है। वर्तमान के विज्ञान का तो है ही। विज्ञान ने तो इसे एक रासायनिक क्रिया माना है। अग्नि को भी जीव नहीं मानते तो भला बिजली का तो कोई प्रश्न ही नहीं।

आगम के आधार पर विचार करें। तैजसकाय के पुद्गल पूरे लोक में व्याप्त है। आठ वर्गणाओं में एक वर्गणा है तैजस वर्गणा। उसके पुद्गल पूरे लोक में व्याप्त हैं। अग्नि कैसे होती है और अग्नि कहाँ है? इस पर आगम में विचार किया गया। बतलाया गया कि सजीव अग्नि तिर्यक्लोक में ही हो सकती है। न ऊँचे लोक में अग्नि है और न नीचे लोक में है। वहाँ अग्नि नहीं, ऊर्जा है उसे अग्नि कहते हैं पर वास्तव में सचित्त अग्नि नहीं है। सचित्त अग्नि केवल मनुष्य लोक में, तिरछे लोक में ही हो सकती है। कह सकते हैं कि नरकलोक में तो बहुत तेज अग्नि है। सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन आदि में वर्णन मिलता है कि नरक लोक में कोई नैरयिक जीव है, उसे निकाल कर यहाँ की अग्नि में डाल दिया जाए तो उसे लगेगा कि जैसे हिमालय में डाल दिया गया हो। इतनी भयंकर अग्नि का ताप है वहाँ। पर वह निर्जीव है। सजीव नहीं है। क्योंकि तिरछे लोक से नीचे सजीव अग्नि होती नहीं है। इसीलिए सूत्रकृतांग में कहा गया-अगणी अकट्ठो, बिना ईंधन के

अग्नि, बिना काष्ठ की अग्नि। 'अग्नि' शब्द का प्रयोग तो किया गया है, पर वास्तव में अग्नि कायिक जीव नहीं है। बिजली भी अग्निकायिक जीव नहीं है। एक तेजोलेश्या सम्पन्न मुनि है, जिसे तेजोपलब्धि प्राप्त है। वह कभी क्रोध में आकर उसका प्रयोग करता है, जैसे गोशालक ने महावीर पर किया था। भगवान् महावीर यात्रा कर रहे थे। गोशालक उनके साथ था। एक संन्यासी पंचाग्नि ताप रहा था, छेड़छाड़ की उसने। क्रोध में आकर उसने तेजोलेश्या का प्रयोग कर दिया। शक्ति का प्रयोग किया, जलने की स्थिति आ गई। लगा कि भस्म हो जाएगा। उस समय भगवान् महावीर ने शीतल लेश्या का प्रयोग कर उसे शान्त कर दिया। तेजोलब्धि की शक्ति इतनी है कि अनेक प्रान्तों को वह भस्म कर सकती है। एक अणुबम से भी अधिक शक्तिशाली तेजोलब्धि का प्रयोग है। किन्तु वह सारा पुद्गल है, अजीव है, निर्जीव है। अब उसे अग्नि कह दें या आज की भाषा में विद्युत। वह सजीव नहीं है।

बिजली अग्नि नहीं है, इसका एक कारण तो यह है कि वह बिना वायु के जलती है। भगवती सूत्र में कहा गया है - **"न विना वाउकाएण अग्गी पज्जलई।"** वायु के बिना अग्नि जलती नहीं है। अग्नि को हमेशा ऑक्सीजन चाहिए। वायु नहीं मिलेगी, अग्नि नहीं जलेगी। ऊर्जा तो होगी, किन्तु अग्नि नहीं जलेगी। जहाँ बिजली का प्रसंग है, वहाँ वैक्यूम करना होता है। वायु का निष्कासन जरूरी है वहाँ। वहाँ ऑक्सीजन का सुयोग मिल जाए तो वह आग का रूप ले सकती है। किन्तु जहाँ ऊर्जा है, वहाँ अग्नि नहीं है। सूर्य का ताप कितना भयंकर होता है। आज तो सौर ऊर्जा का प्रयोग भी होने लगा है। चूल्हा भी जलता है, रसोई भी बनती है और भी अनेक कार्य होते

हैं। पर वह सारी निर्जीव अग्नि है। वह सजीव अग्नि नहीं है। विद्युत है, अग्नि नहीं है। सौर ऊर्जा या जो भी ऊर्जा है, वह तैजस परमाणु है, यानी तैजस वर्गणा है, परमाणु है। इसलिए आगम में इन्हें अग्निसदृश द्रव्य कहा गया है, अग्नितुल्य द्रव्य। अग्नि जैसा द्रव्य है, इसलिए इसका नाम अग्नि रखा गया है। जयाचार्य ने भगवती की व्याख्या में कहा-अग्नि द्रव्य सरीस-अग्नि जैसा द्रव्य। यह अग्निकायिक जीव नहीं है। विद्युत् एक ऊर्जा का प्रवाह है। यह सारा निर्णय हो गया। इस निर्णय के आधार पर फिर यह घोषणा भी गुरुदेव ने कर दी कि बिजली हमारी दृष्टि में अचित्त है, निर्जीव है। शास्त्र के अनेक आधारों पर यह सिद्ध हो गया कि अग्नि जीव नहीं मात्र ऊर्जा है। तैजस वर्गणा के पुद्गल हैं, इसलिए निर्जीव है। यह हमारी मान्यता है।

जैनों में भी कुछ लोग इसे सजीव मानते हैं। यह तो अपना-अपना विचार है। अगर कोई खोज न करे तो परम्परा से जो चल रहा है, वह माना जाता है। हमने तो चिन्तन किया, खोज की, अनुसंधान किया, प्रमाण ढूंढे और इतने प्रमाण उपलब्ध किए आगम के, जिनके आधार पर यह स्थापना करने में हमें कोई संकोच नहीं हुआ। यह कोई संशय में नहीं किया कि अचित्त है या नहीं? अनुसंधान के आधार पर अच्छी तरह निश्चित हो गया कि यह मात्र पुद्गल है, ऊर्जा है, एक शक्ति है, अग्निकायिक जीव नहीं है। अब अपनी-अपनी परम्परा होती है। कुछ लोग ध्यान नहीं देते तो क्या कहा जाए? हाथ में घड़ी बंधी है, तो भी कहते हैं कि सजीव है। घड़ी में बैट्री है। बैट्री है क्या? ऊर्जा का एक स्पन्दन ही तो है। एक रासायनिक स्पन्दन और एक ऊर्जा का स्पन्दन। वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो बैट्री मात्र ऊर्जा का स्पन्दन है। रसायनिक क्रिया होती है, उससे वह चलती है। सारे

इलेक्ट्रोन स्पन्दन ही तो हैं। जुगनूं चमकता है तो आग जैसा लगता है, किन्तु वह आग तो नहीं है। औरों की बात छोड़ दें, हमारे शरीर में भी अग्नि है, पर वह सजीव नहीं, निर्जीव अग्नि है। हमारे शरीर में भी पौद्गलिक अग्नि है। आयुर्वेद को जानने वाला जठराग्नि को जानता है। भोजन करते हैं, वह किससे पचता है? जठराग्नि से पचता है। हमारे जठर यानी पेट की जो अग्नि है, उससे हमारा भोजन पचता है। जब कोई बीमार होता है तो वैद्य उसकी परीक्षा कर कभी-कभी कहते हैं-इसकी अग्नि मंद हो गई है। खाया हुआ पच नहीं रहा है। अग्नि जब तक ठीक रहे, भोजन का ठीक पाचन होता है, वह मंद हो जाए तो भोजन का पाचन नहीं हो पाता। हमारे शरीर में भी अग्नि है, विद्युत् (बिजली) है। शरीर शास्त्र की दृष्टि से देखें तो हर कोशिका का अपना पावर हाउस है। बालोतरा में तो कोई एक-दो पावर हाउस होगा, पर हमारे शरीर की तो हर कोशिका में एक पावर हाउस है। अरबों कोशिकाएं और हर कोशिका का अपना पावर हाउस। इतनी अग्नि भरी पड़ी है शरीर के भीतर। यह बड़ी अद्भुत बात है कि शरीर की अग्नि कभी लीक नहीं होती। यदि हो जाए तो पूरे शरीर में जलन हो जाती है। शरीर अंगारा जैसा हो जाता है। ऐसे कई केस आए प्रेक्षाध्यान शिविरों में कि शरीर पूरा जलने लग गया।

हमारे शरीर में भी अग्नि है। यह सब तैजस वर्गणा के परमाणु हैं, पुद्गल हैं। अब प्रश्न है कि चाहे माइक हो, चाहे घड़ी हो, हम उसे सचित्त नहीं मान सकते। आगम के आधार पर उसे सजीव नहीं सिद्ध किया जा सकता। इसलिए पूरी स्पष्टता रहे। बहुत से भाई आते हैं और कहते हैं कि घड़ी बंधी हुई है, संघट्टा करें या न करें? घड़ी हाथ में बंधी हुई है, बहराएं या न बहराएं? नहीं बहराओ तो आपकी इच्छा। हमें

कोई आपत्ति नहीं है। वंदना करने में स्पर्श करो या नहीं, आपकी इच्छा, पर हमें कोई सैद्धान्तिक आपत्ति नहीं है। क्योंकि उसे हम सजीव नहीं, मात्र ऊर्जा मानते हैं।

एक कठिनाई जरूर है हमारे सामने। परम्पराएं अलग-अलग होती हैं, आचार्य अलग-अलग होते हैं। मैं जो मानता हूँ, वह बात सही है, जो मैं नहीं मानता वह सारी गलत है। ऐसा भ्रम पैदा कर देते हैं। यह कोई संगत बात नहीं है। पहले खोज करनी चाहिए, अनुसंधान करना चाहिए। हमारे सामने प्रश्न आया। कुछ कन्याओं ने शायद महाश्रमणजी से प्रश्न पूछा कि काजू-बादाम देना सन्तों को कल्पता है या नहीं? अब यह सिद्धान्त कहां से आया? सिद्धान्त तो एक ही है कि जो शाकाहार है, शुद्ध भोजन है, जो निर्जीव है, वह साधु के लिए कल्पता है। चाहे काजू हो, चाहे बादाम हो, चाहे बाजरे की रोटी हो। अचित्त सारा कल्पता है। जो शाकाहार है, भक्ष्य है, अभक्ष्य नहीं है, यह सारा कल्पता है। कोई नहीं खाए अच्छी बात है। कोई फलका नहीं खाए तो और अच्छी बात है। अभी यहाँ एक संन्यासी आया था। पता चला कि वह कई वर्षों से अन्न नहीं ले रहा है। साधना की दृष्टि से वह प्रयोग कर रहा है, यह अच्छी बात है। हम यह नहीं कहते कि सारा ही खाना है। पर लेने में दोष कहा जाए, यह गलत बात है। कोई दोष नहीं है। हमारे बहुत से साधु-साध्वियाँ हैं, जो छह विगय नहीं खाते। न दूध, न दही, कुछ भी नहीं। अच्छी बात है। अपनी-अपनी साधना है। खाद्य संयम करें, त्याग करें, इसमें आपत्ति नहीं, यह तो बड़ी अच्छी बात है। पर यह कहें कि दूध पीना दोषपूर्ण बात है, यह एक तरह की भ्रान्ति पैदा करना है। ऐसा नहीं करना है, दोष नहीं बतलाना है।

आचारांग सूत्र की टीका में एक बहुत सुन्दर बात कही गई है।

एक मुनि ऐसा है, जो अचेल रहता है, एक मुनि ऐसा है, जो एक वस्त्र रखता है, एक मुनि ऐसा है, जो दो वस्त्र रखता है और एक मुनि ऐसा है जो तीन वस्त्र रखता है। अब एक वस्त्र रखने वाला यह कहे कि दो वस्त्र रखने वाला ढीला है तो यह एकान्ततः मिथ्या बात है। मुनि को ऐसा कहना कल्पता नहीं है। साधना के अनेक प्रकार हैं। कौन-सा रास्ता चुनें? जैनों में और दूसरे भी बहुत से लोग क्रियाकाण्डों में उलझे रहते हैं। उन्हें यह सोचने को भी समय नहीं है कि अध्यात्म का कैसे विकास करें? विचार नहीं करते, यह उनकी इच्छा है, पर उन्हें इस बात का दोष क्यों दें कि वे अध्यात्म पर कोई विचार नहीं करते? किसी की रुचि तपस्या करने में है, किसी की उपवास करने में है, किसी की रुचि सामायिक करने में है किसी की स्वाध्याय करने में है तो किसी की माला जपने में। अब उन्हें दोषी क्यों कहा जाए? साधना के क्षेत्र में अपनी-अपनी रुचि है।

प्रश्न है कल्प और अकल्प का, सचित्त और अचित्त का। यह निर्णय हमारा स्पष्ट होना चाहिए कि सचित्त है या अचित्त? जब सिद्ध हो जाता है कि सचित्त नहीं है तो फिर लें या न लें, करें या न करें, अपनी अपनी इच्छा है। किन्तु सिद्धान्ततः हमें यह समझ लेना है, जिससे भ्रान्ति न रहे। हम जानते हैं कुछ रासायनिक क्रियाएं ऐसी हैं, जिनके बारे में आज वैज्ञानिक जगत में जितना स्पष्ट हुआ है, शायद धार्मिक जगत में उतना स्पष्ट नहीं था। जैन दर्शन में तो ऊर्जा के बारे में बहुत विस्तार से वर्णन है। पर उनके बारे में जैन मुनि ही ठीक से नहीं जानते तो औरों की तो बात ही क्या? इतनी वर्गणाएं हैं। आठ वर्गणाएं और बयालीस वर्गणाएं हैं पुद्‌गलों की। किस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म वर्गणाए हैं, उनकी जानकारी नहीं है किसी को। यह ध्यान में रहे कि

थोड़ा-सा साहित्य पढ़ लेने से इनका पूरा ज्ञान भी नहीं होता। बहुत व्यापक और गंभीर अध्ययन करने पर कुछ सचाइयां सामने आती हैं। इसलिए बहुत स्पष्ट रहे सबके मन में कि जो बहुत अनुसंधान और खोज के बाद निर्णय दिया था गुरुदेव ने कि बिजली सचित्त नहीं है? अचित्त है, इसलिए चाहे इलैक्ट्रोनिक के उपकरण हों आपके पास, चाहे घड़ी हो या कोई और उपकरण। वहाँ हमारी स्पष्ट धारणा है कि इनका उपयोग कर हम कोई दोष नहीं कर रहे हैं। कोई अग्निकायिक जीव की हिंसा नहीं हो रही है, ऐसा करने में।

परम्परा की बात बड़ी विचित्र होती है। मैं तो यह सोचता हूँ कि हमारे जैन विद्वानों और जैन मुनियों को परम्परा के साथ-साथ थोड़ा गंभीर अध्ययन और गंभीर अनुसंधान की बात भी जोड़नी चाहिए। जैनधर्म और दर्शन के इतने बड़े तत्त्व, किन्तु अनुसंधान के अभाव में हम कुछ बता न सकें, यह चिन्तनीय बात है। अब जैसे-जैसे इन पर काम हो रहा है, खोज हो रही है यहाँ के और विदेशी विद्वानों के द्वारा, बहुत सी बातें सामने आ रही हैं। अब लग रहा है कि इतनी बड़ी सचाइयाँ हैं, जो अभी तक हमारे सामने नहीं आई थीं। विश्वविद्यालय की कुलपति सुधामहीजी ने दिल्ली में अनेकान्त पर भाषण माला का आयोजन किया, उस भाषणमाला में पहला भाषण लक्ष्मीमल सिंघवी का था। एक ईसाई विद्वान् जो पादरी था, उसने एक प्रस्ताव रखा कि यह सिद्धान्त इतना ऊँचा है कि अब आपको एक ग्लोबल इंस्टीट्यूट की स्थापना करनी चाहिए, जिससे पूरे विश्व को पता चले कि अनेकान्त कितना महत्त्वपूर्ण है। आवश्यकता है कि हम लोग थोड़ी दिशा बदलें और आज के वैज्ञानिक साधन, आगमिक साधन और अन्य दर्शनों के तुलनात्मक अध्ययन के बाद कुछ ऐसे निष्कर्ष निकालें, स्थापना करें

जो सारी मानवजाति के लिए कल्याणकारी हो सकें। केवल परम्परा के नाम पर यह न कहें कि हम ऐसा नहीं मानेंगे। आपकी इच्छा है मत मानो, पर वह दूसरों के लिए प्रमाण नहीं हो सकता। मैं मानूं या नहीं मानूं, पर प्रमाण तो वही होगा, जो युक्तिसंगत, तर्कसंगत और सिद्धान्तपरक है, प्रमाणिक हैं।

परम्परा की बात अलग है। दो-तीन युवक साथ में जा रहे थे। एक ने पूछ लिया-यह अंगरखा पहन रखा है, यह तो बहुत पुरानी परम्परा है। उसने कहा, यह मेरे कुल की परम्परा है। परम्पराएं चलती है पर सार्थक वही है, जिसकी प्रामाणिकता सिद्ध हो, जो उपयोगी हो, अन्यथा वह मात्र बाधा ही बन कर रह जाती है। फिर पूछा-आजकल तो दाढ़ी और बाल छोटा रखने की परम्परा है। तुमने तो बाल बढ़ा रखे हैं। उसने कहा- यह मेरे कुल की परम्परा है। फिर पूछा- तुम्हारी शादी हुई या नहीं? उसने कहा-'नहीं हुई। यह भी मेरे कुल की परम्परा है। न मेरे बाप ने शादी की, न मेरे दादा ने की।' अब देखें, इस तरह की परम्परा में कितना विरोधाभास आ जाता है। कोरी परम्परा की दुहाई कहां तक देते रहेंगे?

हमें परम्परा का सम्मान करना है, उसे छोड़ना नहीं है, किन्तु उसी परम्परा को, जिसका कोई अर्थ है, जिसकी कोई सार्थकता है। एक आदमी का पिता दिवंगत हो गया। उसका क्रम था कि रोज सवेरे उठकर वह आले के पास जाता था। पुत्र भी गया। पिता क्यों जाता था, आले के पास, पुत्र को पता नहीं, फिर भी वह गया और रोज का उसका यह क्रम बन गया। किसी ने पूछ लिया-"भोजन के बाद तुम आले के पास क्यों जाते हो?" उसने कहा - 'मेरे पिताजी भी जाते थे।' वह बोला-'क्यों जाते थे, वह मुझे पता है। उनके दांत में छिद्र थे।

दांतों की सफाई के लिए आले में तिनके रखे थे, उसे लेने के लिए वे वहां जाते थे, किन्तु तुम्हारे लिए वहाँ जाना क्या अनिवार्य है?' वह बोला-'यह मैं नहीं जानता, पिताजी ऐसा करते थे। इसलिए मैं भी ऐसा करूँगा।' यह एक अर्थहीन रूढ़ि है। मात्र निरर्थक परम्परा है।

एक होती है आर्थिक परम्परा और एक अर्थहीन परम्परा। सार्थक परम्परा को चलाना बहुत जरूरी है, उसके बिना काम नहीं चलेगा, किन्तु वह सार्थक परम्परा होनी चाहिए। अर्थहीन परम्परा का भार ढोना कोई बुद्धिमानी नहीं है।

बहुत सारे सिद्धान्त ऐसे हैं, जिनकी आज के वैज्ञानिक युग में समीक्षा करना बहुत जरूरी हो गया है। कर्म का सिद्धान्त, जीव का सिद्धान्त, यह सब बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। बहुत वर्ष पहले की बात है। हम भीनासर में थे। रात्रि में एक प्रोफेसर आया। था तो तेरापंथी श्रावक ही। पर वह वैज्ञानिक सोच वाला व्यक्ति था। उसने आकर कहा-'आप लोग जीव की बात बतलाते हैं, पर जब तक बायोलोजी का गहरा अध्ययन नहीं होगा, तब तक आपकी बात चलेगी नहीं।' मैंने कहा-तुम्हारी बात ठीक है। हम दोनों का तुलनात्मक अध्ययन कर रहे हैं।' हमने उसे सारी बात बताई। उसने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा-'यह अच्छी बात है। ऐसा होना ही चाहिए।' आज क्लोनिंग की बात सामने आई है। ऐसे में कहां टिकेगा हमारा कर्मवाद और जीववाद। बड़ा विचित्र प्रश्न है। जहाँ आदमी भेड़ और बकरी पैदा कर सकता है और हॉल में ही किसी वैज्ञानिक ने कम्प्यूटर की टैक्नोलोजी का उपयोग करते हुए आदमी को ही कम्प्यूटर बना दिया। जहाँ ऐसी नित नई वैज्ञानिक प्रगतियाँ और खोजें हो रही हैं, वहाँ हमारे धार्मिक जगत

के लोग केले के छिलके पर ही अटके रहें, यह कहाँ की युक्तसंगत बात है? कहीं पहुँच नहीं पाएंगे। आज का पढ़ा-लिखा आदमी उनकी बात को मानने के लिए तैयार भी नहीं होगा। हमें बहुत ध्यान देना होगा। अगर आज जैनधर्म की विश्व में दो-चार बड़ी लेब्रोरेट्रियाँ होती, वहाँ नए और पुराने सिद्धान्तों पर प्रयोग और प्रशिक्षण चलते तो नए-नए सिद्धान्तों का विकास होता। तब वह सजीव दर्शन होता। आज तो बिना प्रयोग और खोज के उसे सजीव कहने में भी संकोच का अनुभव हो रहा है। बस, केवल दुहाई देने के सिवाय और भी कुछ हमारे पास नहीं है। हमको चिन्तन करना है कि इस दिशा में क्या किया जाना चाहिए?

मैं बहुत छोटा था, तब यह प्रश्न आता था कि अब साम्यवाद आ गया, ऐसे में कर्मवाद का क्या होगा? मैं बड़े विश्वास के साथ कहा करता था कि चिन्ता की कोई बात नहीं। इससे कर्मवाद की मान्यता झूठी नहीं हो जाएगी। कर्मवाद का सिद्धान्त कायम रहेगा। बड़े हुए तो और भी बहुत से प्रश्न सामने आए और अब यह जीन का प्रश्न सामने है। एक-एक कोशिका के द्वारा नए-नए जीव पैदा करने का, क्लोन का, कृत्रिम गर्भाधान का। पिछले वर्ष क्लोन के प्रश्न पर हमारे साधु-साध्वियों ने कहा - 'हमारी मान्यताओं से इसकी संगत कैसे बैठेगी?' मैंने कहा - चिन्ता की कोई बात नहीं। हमारी खोजें और अनुसंधान जो इस दिशा में चल रहे हैं, कोई समाधान अवश्य देंगे। हम इन विधियों को पहले से जानते हैं। एक जैन ग्रन्थ था जोणी पाहुड़। पूर्व का एक अंग है-जोणी पाहुड़। उस ग्रन्थ में सचित्त द्रव्यों की, वस्तुओं की योनियाँ वर्णित हैं। इसी आधार पर आचार्य सिद्धसेन ने

सेना का निर्माण किया था। जब राजा पर विरोधी सेना ने आक्रमण कर दिया तो असहाय राजा सिद्धसेन के पास आकर बोला-'अब आप ही कोई उपाय करें।' सिद्धसेन ने इसी विधि के आधार पर तालाब से घुड़सवार पैदा कर दिए। आक्रमणकारी सेना भाग गई। विधान है कि योनिप्राभृत के सिद्धान्त का पारायण रात्रि के उस प्रहर में हो, जब कोई सुन न पाए। आचार्य एक बार रात्रि में शिष्य को पढ़ा रहे थे। रात्रि में बारह बजे के बाद कोई व्यक्ति आ गया। वे बता रहे थे कि अमुक प्रयोग किया जाए तो तालाब में मछलियां ही मछलियां पैदा हो जाएंगी। उसने सुन लिया। दूसरे दिन देखा गया कि तालाब में मछलियां ही मछलियां हो गई हैं। प्रश्न हुआ कि यह कैसे हो गया? पता चला कि किसी ने उस विधि को सुन लिया है।

क्लोन की बात हमारे लिए कोई चिन्ता की बात नहीं है। पर सब विषयों में हमारा ज्ञान, खोज, रिसर्च होनी चाहिए। सिर्फ परम्परा के आधार पर कोई समाधान नहीं प्राप्त होगा। हमारे सामने ऐसे बहुत सारे प्रश्न आते हैं, इसलिए हमने व्याख्यान में इसका उल्लेख किया, जिससे सबको ज्ञात रहे।

अभी-अभी एक प्रश्न आया कि विद्युत् (बिजली) सचित्त नहीं है तो क्या एक साधु स्विच को चालू कर सकता है या बन्द कर सकता है? यह व्यवहार की बात है। प्रयोग करना या न करना यह हमारे व्यवहार की बात है। हम कितना प्रयोग करें, कितना न करें? अभी नहीं कर सकते। वर्जित है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि विद्युत को हम सचित्त मानते हैं। पर प्रयोग करने में विवेक से काम लेते हैं कि कितना व्यर्थ का काम होता है, कितना सार्थक काम होता है? दो बातें

हो गई-सिद्धान्त और व्यवहार। व्यवहार में कितना काम में लेना, यह अलग बात है। व्यवहार में बहुत सारी बातें वर्जित भी होती हैं। यह खाना, यह नहीं खाना। ऐसे में सिद्धान्त को प्रयोग में लाएं तो बड़ी विचित्र बात हो जाती है। सिद्धान्ततः विहित है, पर व्यवहार में बहुत सारी वर्जित है। क्योंकि स्विच को ऑन और ऑफ करने में बहुत सारी समस्याएं पैदा हो जाती हैं। इसलिए अभी व्यवहार में इसे नहीं लेते। किन्तु सिद्धान्ततः यही बात मान्य है कि विद्युत सचित्त नहीं है।

हम ऐसा नहीं करते, इसलिए यह बात गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए। गलत या सही होने का आधार या तो आगम हैं या दूसरे ऐसे कोई तथ्य, जिनके आधार पर यह मानना पड़े कि यह बात सही नहीं है। अपनी परम्परा निभाओ, किन्तु दूसरों पर आरोपित मत करो कि हम जो कर रहे हैं, वह तुम नहीं करोगे तो गलत होगा। तुम्हारी इच्छा है तो बाजरी की रोटी के अतिरिक्त कुछ मत खाओ। जिस व्यक्ति को जमीन के नीचे पानी देखना है, उसके लिए प्राचीन योग का नियम है कि छह महीने तक बाजरी के सिवाय और कुछ न खाए। तभी वह शक्ति, वह दृष्टि पैदा होती है। यह अपनी साधना है, अपना प्रयोग है। असाढ़ा का एक छोटा-सा बच्चा है। मेरे सामने आया। साधु बनना चाहता है। उसने कहा - मैं मुनि तो बन जाऊँगा, पर मुझे सोगरा चाहिए। गेहूँ का फुलका मिले या न मिले पर सोगरा अनिवार्य रूप से मिलना चाहिए। यह अपनी-अपनी रुचि है, पसंद है। हम किसी की रुचि को प्रतिबंधित या नियंत्रित करना नहीं चाहते। प्रश्न है सिद्धान्त का। सिद्धान्त क्या कहता है? इस पर हमें विचार करना है। इसी आधार पर हमारा निर्णय होना चाहिए।

८. समीक्षा

विज्ञप्ति अंश नं० १. :- हमें विद्युत् (बिजली) के प्रश्न पर विचार करना है। विद्युत् (बिजली) सचित्त है या अचित्त - आज बिजली का प्रयोग बहुत होता है। पूज्य गुरुदेव के शासन काल में चिंतन चला कि बिजली सजीव है अथवा निर्जीव? पूज्य गुरुदेव बीदासर में विराज रहे थे। वहीं तीन दिनों तक हजारों व्यक्तियों के बीच चिंतन चला। पक्ष-विपक्ष में बहुत तर्क आए। आखिर निर्णय हुआ कि बिजली सजीव नहीं है। बिजली ऊर्जा है, जीव नहीं है। इस आधार पर विद्युत् को निर्जीव माना गया।

समीक्षा :- "आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने अपनी विज्ञप्ति में लिखा कि बिजली सजीव है अथवा निर्जीव है इसके बारे में तीन दिनों तक बीदासर में चर्चा चली, पक्ष-विपक्ष में बहुत तर्क आए। आखिर निर्णय हुआ कि बिजली सजीव नहीं, बिजली ऊर्जा है, जीव नहीं है।" इस संदर्भ में जानना यह कि आप का पक्ष तो बिजली को निर्जीव ऊर्जा मानने वाला ही था और है, इसलिए इसका उपयोग कर रहा है। किन्तु सभा में विपक्ष जो बिजली को सजीव अग्निकाय मानने वाला था, उसने बिजली के सजीव, अग्निकाय के पक्ष में क्या-क्या तर्क रखे? जिन्हें आपने किन-किन तर्कों एवं आगम आधारों से खण्डन कर, अपने पक्ष में निर्णय लिया, इनका जिक्र कहीं भी आपने अपनी विज्ञप्ति में नहीं किया, जबकि आपने लिखा है कि बिजली सजीव-अजीव के बारे में बहुत तर्क-वितर्क आये। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि बिजली को निर्जीव ऊर्जा के लिए जो भी आपके द्वारा निर्णय लिया गया है, वह एक पक्षीय है, वस्तुतः पक्ष-विपक्ष में तर्क वितर्क

हुआ ही नहीं। तीन दिन तक आपके नेतृत्व एवं आपकी ही निर्णायकता में सभा चली। आपने स्वयं ने तर्क वितर्क प्रस्तुत करके विद्युत् (बिजली) जो सचित्त तेऊकाय है उसे अचित्त ऊर्जा घोषित कर दी। क्योंकि जिसका उपयोग आपका श्रमण वर्ग काफी समय से कर रहा है, जिसके बिना आपका संघ रह नहीं सकता, उसे औचित्य करार देना आवश्यक था ही, अतएव जैसे तैसे तर्क वितर्क का बहाना लेकर आपने बिजली को अचित्त ऊर्जा करार दे दिया।

अस्तु, ऐसे बिन्दुओं पर वास्तविक निर्णय लेते समय आगम वाणी के विशेषज्ञ बहुश्रुत, स्थविर भगवन्तों, को विशेष कर उन्हें जो विद्युत् (बिजली) को आगम अनुसार सचित्त तेऊकाय मानते हैं, उन्हें आमंत्रित करना चाहिए और वे जो आगम पक्ष रखते, उनका आपके द्वारा आगम पक्ष से खण्डन करके आप अपना पक्ष रख कर विद्युत (बिजली) को निर्जीव ऊर्जा प्रमाणित करते तो वह निर्णय मौलिक एवं वास्तविक होता अन्यथा यह निर्णय तो अपनी प्रवृत्ति को पुष्ट करने के लिए मोहर छाप लगाना मात्र है। जिसमें अंश मात्र भी मौलिकता नहीं है मात्र आगमों की दुहाई देकर अपने विचारों को पुष्ट करने की अभिव्यक्ति मात्र है।

पक्ष-विपक्ष, तर्क-वितर्क किसे कहा जाय? इसका उदाहरण है आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व का। संवत् २००६ में सादड़ी-मारवाड़ में स्थानकवासी परम्परा में श्रमण संघ का निर्माण हुआ, इसी वर्ष के चातुर्मास के बाद श्रमण संघ की वैचारिक एकता हेतु सोजतसिटी में साधु समाज के मंत्रिमंडल की बैठक हुई। वहाँ स्थानकवासी परम्परा के मूर्धन्य संत एकत्रित हुए। पूज्य गुरुदेव बहुश्रुत पण्डित रत्न श्री समर्थमल जी म. सा. को भी वहाँ विशेष रूप से आमंत्रित किया

गया। अनेक प्रकार की चर्चाओं के बीच विद्युत् (बिजली) सम्बन्धी चर्चा भी लगातार दो दिन तक चली, भले ही उस चर्चा में हजारों व्यक्ति नहीं थे, तथापि पक्ष-विपक्ष के मौलिक विद्वान्, वे भी अलग-अलग सम्प्रदायों के मूर्धन्य संत, उस चर्चा में मौजूद थे। मुनि श्री सुशीलकुमारजी एवं श्रमण संघ की रीढ़ समझे जाने वाले अनेक साहित्यों के अभ्यासी उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दंजी म. सा. जो विद्युत् (बिजली) को अचित्त मानने के प्रबल पक्षधर थे, वे वहाँ मौजूद थे। किन्तु आगम के अकाट्य प्रमाणों को सुनकर देखकर सभी को स्वीकार करना पड़ा कि **आगम-प्रमाण के आधार से विद्युत् (बिजली) सचित्त तेऊकाय है।** बाद में उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी म. सा. ने "अमर भारती" पत्रिका जो उनके विचारों की वाहक पत्रिका है, उसमें "**आगमकार तो बिजली को सचित्त करार देते हैं**" लिख कर आगम आशयों को स्पष्ट अंकित किया।

यद्यपि बाद में कविजी की आगमों पर श्रद्धा नहीं रही थी। विज्ञान के प्रभाव में आकर आपने अपने लेखों के माध्यम से "क्या आगमों को चुनौती दी जा सकती है" इत्यादि के द्वारा आगमों को अप्रमाणित सिद्ध करने का प्रयत्न तक किया, तथापि आगमकारों के मन्तव्य को आगमकारों की दृष्टि में **विद्युत (बिजली) सचित्त तेऊकाय है इस बात को स्वीकार किया।** इसे कहा जाता है पक्ष-विपक्ष की चर्चा वार्ता। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, जिनभद्रसूरि सरीखे विशिष्ट विद्वान् भी केवलज्ञान सम्बन्धी आगम पाठों का अपने पक्ष में अर्थ करके आगम पाठों की संगति बिठाने का प्रयत्न करते हैं। ताकि पाठक दोनों की तर्कों का विचार करके सत्य को पा सके। आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी की विद्युत् (बिजली) अचित्त ऊर्जा सम्बन्धी विज्ञप्ति से

स्पष्ट परिलक्षित होता है कि आपने विद्युत (बिजली) के सचित्त तेऊकाय सम्बन्धी आगम पाठों को छुआ तक नहीं है। विज्ञप्ति में पक्ष-विपक्ष की तर्क वितर्क तो कहीं करणगोचर होती ही नहीं है। मात्र अपनी मान्यता को पुष्ट करने के लिए विज्ञप्ति जारी की गई है।

आगे आचार्य श्री लिखते हैं कि आखिर निर्णय हुआ कि - "**बिजली सजीव नहीं है। बिजली ऊर्जा है, जीव नहीं है। इस आधार पर विद्युत् (बिजली) को निर्जीव माना गया है।**" प्रश्न होता है कि ऊर्जा किसे कहना, क्या ऊर्जा निर्जीव ही होती है? ऊर्जा का अर्थ है शक्ति, किसी कार्य को सम्पन्न करने में जो शक्ति काम आती है, खर्च होती है वह ऊर्जा कहलाती है। वह ऊर्जा सजीव निर्जीव दोनों ही प्रकार की हो सकती है। अनाज, वनस्पति, पृथ्वी, पानी, मनुष्य सभी में ऊर्जा है। जिन-जिन में ऊर्जा है उन सभी को यदि निर्जीव मान लिया जाय तो छह ही काय जीवों को निर्जीव ऊर्जा मानना होगा। क्योंकि छह ही काय जीवों में ऊर्जा है। क्या आचार्य श्री इसे मानने को तैयार होंगे? अंगारों की अग्नि से जो ऊर्जा तैयार होती है उससे वाष्पीय इंजन वाली रेलगाड़ियें, नौकाएं आदि चलती है, अंगारों की अग्नि में भी ऊर्जा है तो क्या आचार्य श्री उन अंगारों की अग्नि को भी निर्जीव ऊर्जा मानने को तैयार होंगे? बन्धुओ! जीवों के शरीर ऊर्जा के बिना संभव ही नहीं है। अतः आचार्य श्री ने जिस बिजली को निर्जीव ऊर्जा कहा है वह वास्तव में निर्जीव नहीं बल्कि सजीव अग्निकाय रूप ऊर्जा है।

विज्ञप्ति अंश नं० २. :- 'आखिर आधार क्या है? आधार दोनों हैं। आगम का आधार है। उससे भी बिजली निर्जीव सिद्ध होती है। वर्तमान के विज्ञान का तो है ही। विज्ञान ने तो इसे एक रासायनिक

क्रिया माना है। अग्नि को भी जीव नहीं मानते तो भला बिजली का तो कोई प्रश्न ही नहीं।

आगम के आधार पर विचार करें। तैजसकाय के पुद्गल पूरे लोक में व्याप्त है। आठ वर्गणाओं में एक वर्गणा है तैजस वर्गणा। उसके पुद्गल पूरे लोक में व्याप्त हैं। अग्नि कैसे होती है और अग्नि कहाँ है? इस पर आगम में विचार किया गया। बतलाया गया कि सजीव अग्नि तिर्यक्लोक में ही हो सकती है। न ऊंचे लोक में अग्नि है, न नीचे के लोक में है। वहाँ अग्नि नहीं, ऊर्जा है। उसे अग्नि कहते हैं, पर वास्तव में सचित्त अग्नि नहीं है। सचित्त अग्नि केवल मनुष्य लोक में, तिरछे लोक में ही हो सकती है।'

समीक्षा :- इस विज्ञप्ति अंश में आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने विद्युत् (बिजली) के निर्जीव के लिए दो आधार फरमाये हैं - जिसमें विज्ञान के आधार के लिए आपने लिखा है कि - "**वर्तमान के विज्ञान का तो है ही। विज्ञान ने तो इसे एक रासायनिक क्रिया माना है। अग्नि को भी जीव नहीं मानते तो भला बिजली का तो कोई प्रश्न ही नहीं।**" इस वाक्यांश से विज्ञान की दो बातें परिलक्षित होती है एक तो बिजली को उन्होंने रासायनिक क्रिया माना है दूसरा अग्नि को जीव ही नहीं माना है। यदि आचार्य श्री वैज्ञानिक मत को मान्यता देकर उसका आधार समाज के सामने रखते हैं कि बिजली सचित्त तेऊकाय न होकर एक रासायनिक क्रिया है, तो आपको विज्ञान के दूसरे पक्ष को जिसमें उन्होंने अग्नि को भी जीव ही नहीं माना है, उसे भी मान्य करना होगा कि अग्नि में जीव ही नहीं है। क्या आचार्य श्री इसके लिए तैयार होंगे? ऐसा तो कभी हो नहीं सकता कि एक ही विषय (अग्नि) में विज्ञान के एक मत को जो स्वयं

के पक्ष में जाता है उसे तो स्वीकार करे और दूसरे पक्ष को अस्वीकार करे। अतएव विज्ञान का आधार आपने बिजली की निर्जीवता के लिए दिया वह अपने आप ही खण्डित हो जाता है। वैसे आध्यात्मिक क्षेत्र में किसी वस्तु के सजीव निर्जीव के विषय में आगमवाणी की कसौटी सत्य एवं प्रामाणिक होती है, विज्ञान की इसमें कोई दखलंदाजी होनी ही नहीं चाहिए।

आचार्य श्री ने दूसरा आधार आगम का दिया। इसके लिए आपने लिखा ''आगम का आधार है उससे भी बिजली निर्जीव सिद्ध होती है।'' इसके लिए आप लिखते हैं कि - ''आगम के आधार पर विचार करे। **तैजस्काय** के पुद्गल पूरे लोक में व्याप्त है। आठ वर्गणाओं में एक वर्गणा है, उसके पुद्गल पूरे लोकव्याप्त है। वे पुद्गल अग्नि नहीं, ऊर्जा है, उसे अग्नि कहते हैं पर वास्तव में सचित्त अग्नि नहीं है।'' आचार्य प्रवर! आप तेजस्काय अथवा तैजस वर्गणा के पुद्गलों में किन को ऊर्जा एवं अचित्त अग्नि मानते हैं? क्योंकि आपने तैजस्काय और तैजस् वर्गणा पुद्गल दोनों नामों का उपयोग किया है। वस्तुतः तैजस्काय और तैजस् वर्गणा के पुद्गल दोनों अलग-अलग हैं। एक सजीव है तो दूसरा निर्जीव तथा दोनों सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं। आगम में सूक्ष्म तैजस्काय को पूरे लोक में माना है। वे पुद्गल नहीं, किन्तु अग्निकाय जीवों के बद्ध औदारिक शरीर है। जो सजीव है, निर्जीव नहीं है, न ही ऊर्जा है। दूसरे हैं तैजस् वर्गणा के पुद्गल जो आठ वर्गणाओं में से एक वर्गणा है और सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है। किन्तु उन तैजस् वर्गणा के पुद्गलों का अग्निकाय की सजीवता, अजीवता से कोई लेना देना नहीं है, वह तो चौबीस ही दण्डकों के सूक्ष्म (आभ्यन्तर) तैजस् शरीर का कारण (घटक) द्रव्य

है। जो नोकर्म रूप है एवं चक्षु ग्राह्य नहीं है। इन पुद्‌गलों का विद्युत् (बिजली) या अग्निकाय से दूर का भी रिश्ता नहीं है। उसे बिजली की निर्जीवता के लिए आगम आधार बताना अप्रासंगिक तो है ही साथ ही अनागमिक भी है।

आचार्यश्री का यह कथन कि "सचित्त अग्नि तिर्यक् लोक में ही हो सकती है," अनागमिक है। आगमकार सूक्ष्म अग्नि को पूरे लोक में मानते हैं। सूक्ष्म अग्नि इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होने से **"वहाँ अग्नि नहीं, ऊर्जा है। उसे अग्नि कहते हैं।"** इत्यादि कथन आगम पर आधारित नहीं है। पूरे लोक में जो तैजस् वर्गणा के पुद्‌गल एवं सूक्ष्म अग्नि है। वह इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होने से उसका ग्रहण ही नहीं होता है। अतः "वहाँ अग्नि नहीं है, ऊर्जा है। उसे अग्नि कहते हैं" ऐसा आगम में कहीं नहीं कहा गया है। आगमकार तो अग्नि में पके हुए पदार्थों को जो निर्जीव हो चुके हैं, उन्हें ही अचित्त तैजस्‌काय मानते हैं। यानी तैजस्‌काय के मुकेलकों को ही। इसके अलावा लोक में फैले हुए किसी भी पुद्‌गल को अचित्त अग्नि अथवा ऊर्जा नहीं मानते हैं। हाँ आचार्यश्री यदि यह लिखते कि बादर अग्नि तियक्‌लोक में ही मिलती है तो ठीक भी था, किन्तु यह लिखना कि ऊँचे नीचे लोक में अग्निकाय नहीं ऊर्जा है उसे अग्नि कहते हैं। पूर्णतया मिथ्या एवं अनागमिक है।

विज्ञप्ति अंश नं० ३. :- 'कह सकते हैं कि नरकलोक में तो बहुत तेज अग्नि है। सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन आदि में वर्णन मिलता है कि नरकलोक में कोई नैरयिक जीव है, उसे निकाल कर यहाँ की अग्नि में डाल दिया जाए तो उसे लगेगा कि जैसे हिमालय में डाल दिया गया हो। इतनी भयंकर अग्नि का ताप है वहाँ। पर वह निर्जीव है।

सजीव नहीं है। क्योंकि तिरछे लोक में नीचे सजीव अग्नि होती नहीं है। इसीलिए सूत्रकृतांग में कहा गया - ''अगणी अकट्ठो'' बिना ईंधन के अग्नि, बिना काष्ठ की अग्नि। 'अग्नि' शब्द का प्रयोग तो किया गया है, पर वास्तव में अग्निकायिक जीव नहीं है। बिजली भी अग्निकायिक जीव नहीं है।'

समीक्षा :- विज्ञप्ति के इस अंश में आचार्य श्री आगम का दूसरा आधार देकर बिजली को निर्जीव सिद्ध होना फरमाते हैं। इसके लिए आप सूत्रकृतांग उत्तराध्ययन सूत्र का संदर्भ देकर फरमाते हैं कि ''**नरक लोक में बहुत तेज अग्नि है पर वह निर्जीव है। सजीव नहीं।**'' क्या आचार्य श्री का ऐसा फरमाना सत्य है? सबसे पहली बात तो यह है कि आचार्य श्री ने जिन सूत्रों का संदर्भ दिया वहां नरक क्षेत्र के स्पर्शादि का वर्णन है ही नहीं, दूसरी बात आपने वहाँ **तेज अग्नि लिखा** जबकि नरक लोक में अग्नि है ही नहीं। अतः वहाँ बहुत तेज अग्नि लिखना ही मिथ्या है। वस्तुतः वहाँ (नरक लोक) की जमीन ही स्वाभाविक रूप से वैसी गर्म है, वहाँ किसी ईंधन आदि के द्वारा अग्नि या उष्मा पैदा नहीं की जाती है। इसलिए वहाँ अग्नि कहना ही मिथ्या है। फिर भी आगमकारों ने वहाँ के स्पर्श को निर्जीव नहीं माना बल्कि उष्णयोनिक सजीव पृथ्वीकाय रूप माना है। अतएव आचार्य श्री का लिखना कि नरक लोक में बहुत तेज अग्नि है, पर वह निर्जीव है सजीव नहीं, कैसे उचित एवं आगम सम्मत कहा जा सकता है? नरक लोक के क्षेत्र का स्पर्श कैसा है जिसके लिए जीवाभिगम सूत्र की चतुर्विधा नामक तृतीय प्रतिपत्ति के दूसरे नैरियक उद्देशक में नरकावासों के स्पर्श के लिए निम्न पाठ है। न कि सूत्रकृतांग एवं उत्तराध्ययन सूत्र में, जैसा कि आचार्य श्री ने अपनी विज्ञप्ति में लिखा-

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केरिसया फासेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहानामए असिपत्तेइ वा खुरपत्तेइ वा कलंबचीरियापत्तेइ वा, सत्तग्गेइ वा कुंतग्गेइ वा तोमरग्गेइ वा नारायग्गेइ वा सूलग्गेइ वा लउडग्गेइ वा भिंडिपालग्गेइ वा सूचिकलावेइ वा कवियच्छूइ वा विंचुयकंठएइ वा, इंगालेइ वा जालेइ वा मुम्मुरेइ वा अच्चिइ वा अलाएइ वा सुद्धागणीइ वा भवे एतारूवे सिया?

णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरा चेव जाव अमणामतरका चेव फासेणं पण्णत्ता। एवं जाव अहे सत्तमाए पुढवीए।

अर्थात् - हे भगवन्! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावासों का स्पर्श कैसा कहा गया है?

हे गौतम! जैसे तलवार की धार का, उस्तरे की धार का, कदम्बचीरिका (तृणविशेष जो बहुत तीक्ष्ण होता है) के अग्रभाग का, शक्ति (शस्त्रविशेष) के अग्रभाग का, भाले के अग्रभाग का, तोमर के अग्रभाग का, बाण के अग्रभाग का, शूल के अग्रभाग का, लगुड़ के अग्रभाग का, भिण्डीपाल के अग्रभाग का, सूइयों के समूह के अग्रभाग का, कपिकच्छु (खुजली पैदा करने वाली, वल्ली), बिच्छू का डंक, **अंगार, ज्वाला, मुर्मुर (भोभर की अग्नि), अर्चि, अलात (जलती लकड़ी), शुद्धाग्नि (लोहपिण्ड की अग्नि)** इन सबका जैसा स्पर्श होता है, क्या वैसा स्पर्श नरकावासों का है? भगवान् ने कहा कि ऐसा नहीं है। इनसे भी अधिक अनिष्टतर यावत् अमनाम उनका स्पर्श होता है। इसी तरह अधःसप्तमपृथ्वी तक के नरकावासों का स्पर्श जानना चाहिए।

जैसा इस पाठ से स्पष्ट है कि उष्णवेदनीय नरकावासों का पृथ्वी का स्पर्श अग्नि रूप नहीं अपितु अग्नि से अनन्तगुणी वेदना वाला बतलाया है। उत्तराध्ययन सूत्र के उन्नीसवें अध्ययन की ४७ वीं गाथा में मृगापुत्र जी अपनी माता से कहते हैं-

जहा इहं अगणी उण्हो, इत्तो अणंतगुणो तहिं।
णरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए।।

भावार्थ - यहाँ जैसी अग्नि उष्ण है उससे अनन्तगुणा उष्णता उन नरकों में हैं। उस उष्णवेदना रूप असाता को मैंने अनन्ती बार वेदन की है, सहन की है।

नरकों में बादर अग्नि नहीं है, किन्तु वहाँ की पृथ्वी का स्पर्श ही ऐसा है। उसे तेज अग्नि बताना, उसे निर्जीव कहना, बिजली की निर्जीवता के लिए उसे आगम का आधार बताना मिथ्या तो है ही साथ ही उक्त आगम पाठों की अवहेलना करना है।

आचार्य प्रवर! नरकावासों का स्पर्श निर्जीव नहीं बल्कि सजीव पृथ्वीकायिक है। परमाधार्मिकों द्वारा उत्तर वैक्रिय से अग्नि जैसे पुद्गल विकुर्वित करके नरक जीवों को जो वेदना दी जाती हैं। उसके लिए ही सूत्रकृतांग सूत्र के पांचवें अध्ययन के दूसरे उद्देशक की ११ वीं गाथा में "**अगणी अकट्ठो**" बिना काष्ठ की अग्नि यानी देवकृत विकुर्वित अग्नि कहा है। जो स्वाभाविक नरक क्षेत्र के लिए नहीं। वह अग्नि उत्तर वैक्रिय अग्नि होने से उसे आगमकारों ने जीव युक्त नहीं बतलाया है। यह कोई विद्युत् (बिजली) नहीं है। विद्युत् (बिजली) बादर अग्नि को आगमकार ने मनुष्य लोक में ही माना है। जिस प्रकार उत्तर वैक्रिय से देव समूह जमीन पर पानी का छिड़काव करता है। फूलों की वर्षा करते हैं। वह पानी एवं फूल सजीव पानी वनस्पति जैसी दिखते हुए भी

वैक्रिय पुद्गल रूप होने से निर्जीव समझे जाते हैं। वैसे ही परमाधामी देवों द्वारा नैरियक जीवों को दुःख पहुँचाने के लिए विकुर्वित अग्नि भी अग्नि जैसी दिखती हुई भी वैक्रिय पुद्गलों से निर्मित होने से वह निर्जीव समझी जाती है। जबकि वर्तमान विद्युत् (बिजली) तो औदारिक पुद्गलों के मानव द्वारा निर्मित होने से इसका वैक्रिय अग्नि के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है। आगमकार वैक्रिय पुद्गलों से निर्मित अग्नि को निर्जीव कहते हैं जबकि औदारिक पुद्गलों से निर्मित विद्युत् (बिजली) को सजीव तेऊकाय कहते हैं तो फिर आचार्य श्री का इनका एक दूसरे के साथ सम्बन्ध जोड़ने का कोई तुक ही नहीं है। देवों द्वारा विकुर्वित वैक्रिय पुद्गलों द्वारा निर्मित अग्नि का बिजली के साथ सम्बन्ध जोड़ कर उसे आगम आधार बताना एकदम अनुचित एवं अनागमिक है।

जीवाभिगम सूत्र की चतुर्विध नामक तृतीय प्रतिपत्ति में उष्ण वेदनीय नरकावासों का पृथ्वी का स्पर्श कितना गर्म होता है उसका स्वरूप बतलाते हुए असत्कल्पना से उदाहरण देकर आगमकार बतलाते हैं कि यदि कोई देव उन नैरियकों को लाकर यहाँ की बड़ी-बड़ी भट्टियों में रख दे, तो उन्हें बड़ी ठण्डक का अनुभव होता है। इसके लिए आगम में उदाहरण दिया है -

हे गौतम! असत्कल्पना के अनुसार उष्णवेदनीय नरकों से निकल कर किसी नैरयिक जीव को इस मनुष्य लोक में जो गुड़ पकाने की भट्टियां, शराब बनाने की भट्टियां, बकरी की लिण्डियों की अग्नि वाली भट्टियां, लोहा गलाने की भट्टियां, ताँबा गलाने की भट्टियां, इसी तरह रांगा, सीसा, चांदी, सोना हिरण्य को गलाने की भट्टियां, कुम्भकार के भट्टे की अग्नि, मूस की अग्नि, ईंटें पकाने के भट्टे की

अग्नि, कवेलु पकाने के भट्टे की अग्नि, लोहार के भट्टे की अग्नि, इक्षुरस पकाने की चूल की अग्नि, तिल की अग्नि, तुष की अग्नि, नड-बांस की अग्नि आदि जो अग्नि और अग्नि के स्थान हैं, जो तप्त हैं और तपकर अग्नि तुल्य हो गये हैं, फूले हुए पलास के फूलों की तरह लाल-लाल हो गये हैं, जिनमें से हजारों चिनगारियां निकल रही हैं, हजारों ज्वालाएं निकल रही हैं, हजारों अंगारे जहां बिखर रहे हैं और जो अत्यन्त जाज्वल्यमान हैं, जो अन्दर ही अन्दर धू-धू धधकते हैं, ऐसे अग्निस्थानों और अग्नियों को वह नारक जीव देखे और उनमें प्रवेश करे तो वह अपनी उष्णता को (नरक की उष्णता को) शांत करता है, तृषा, क्षुधा और दाह को दूर करता है और ऐसा होने से वह वहाँ नींद भी लेता है, आँखें भी मूँदता है, स्मृति, रति, धृति और मति (चित्त की स्वस्थता) प्राप्त करता है और ठंडा होकर अत्यन्त शान्ति का अनुभव करता हुआ धीरे-धीरे वहाँ से निकलता हुआ अत्यन्त सुख-साता का अनुभव करता है। भगवान् के ऐसा कहने पर गौतम ने पूछा कि हे भगवन्! क्या नारकों की ऐसी उष्णवेदना है? भगवान् ने कहा-नहीं, यह बात नहीं है, इससे भी अनिष्टतर उष्णवेदना को नारक जीव अनुभव करते हैं।

आचार्य प्रवर! नरक क्षेत्र की उष्णता के बारे में आगम पाठ तो यह है। आप अपने मन से जचे जैसी वहाँ तेज अग्नि बतावें, उसे अचित्त अग्नि बतावें, ऊर्जा बतावें अथवा और कोई कहे, यह आपकी इच्छा की बात है।

विज्ञप्ति अंश नं० ४. :- एक तेजोलेश्या सम्पन्न मुनि है, जिसे तेजोपलब्धि प्राप्त है। वह कभी क्रोध में आकर उसका प्रयोग करता है, जैसे गोशालक ने महावीर पर किया था। भगवान् महावीर यात्रा कर

रहे थे। गोशालक उनके साथ था। एक संन्यासी पंचाग्नि ताप रहा था, छेड़छाड़ की उसने। क्रोध में आकर उसने तेजोलेश्या का प्रयोग कर दिया। शक्ति का प्रयोग किया, जलने की स्थिति आ गई। लगा कि भस्म हो जाएगा। उस समय भगवान् महावीर ने शीतल लेश्या का प्रयोग कर उसे शान्त कर दिया। तेजोलब्धि की शक्ति इतनी है कि अनेक प्रान्तों को वह भस्म कर सकती है। एक अणुबम से भी अधिक शक्तिशाली तेजोलब्धि का प्रयोग है। किन्तु वह सारा पुद्गल है, अजीव है, निर्जीव है। अब उसे अग्नि कह दें या आज की भाषा में विद्युत् (बिजली)। वह सजीव नहीं है।

समीक्षा - इस विज्ञप्ति अंश में आचार्य श्री विद्युत् (बिजली) की तेजोलेश्या के पुद्गलों से तुलना कर उसे निर्जीव होना फरमाते हैं। "जिस प्रकार तेजोलेश्या के पुद्गल अजीव है, निर्जीव है। अब उसे अग्नि कह दे या आज की भाषा में विद्युत् (बिजली)। वह सजीव नहीं।"

आचार्य प्रवर! भगवती सूत्र के सातवें शतक के दसवें उद्देशक में तेजोलेश्या के पुद्गलों को अचित्त, प्रकाश तापक पुद्गल कहा है, वहाँ बिजली का लवलेश नाममात्र भी इन पुद्गलों के लिए उपयोग नहीं हुआ है। इसके लिए पाठ यह है -

प्रश्न - अत्थि णं भंते! अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पभासेंति?

उत्तर - हंता, अत्थि।

प्रश्न - कयरे णं भंते! अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, जाव पभासेंति?

उत्तर - **कालोदाई! कुद्धस्स अणगारस्स तेयलेस्सा णिसट्ठा**

समाणी दूरं गया, दूरं णिपतइ, देसं गया देसं णिपतइ, जहिं जहिं च णं सा णिपतइ, तहिं तहिं णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, जाव पभासेंति, एएणं कालोदाई! ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति जाव पभासंति। तए णं से कालोदाई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठऽट्ठमंजाव अप्पाणं भावेमाणे जहा पढमसए कालासवेसियपुत्ते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या अचित्त पुद्गल भी अवभासित होते हैं, उद्योत करते हैं, तपते हैं और प्रकाश करते हैं?

उत्तर - हाँ, कालोदायी! करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! कौनसे अचित्त पुद्गल अवभास करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं?

उत्तर - हे कालोदायिन्! कुपित हुए साधु की तेजोलेश्या निकल कर दूर जाकर गिरती है, जाने योग्य देश (स्थान) में जाकर उस देश में गिरती है। जहाँ जहाँ वह गिरती है, वहाँ वहाँ अचित्त पुद्गल भी अवभास करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं। इस कारण हे कालोदायिन्! अचित्त पुद्गल भी अवभास करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं। इसके बाद कालोदायी अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करते हैं और बहुत चतुर्थ (उपवास), षष्ठ (दो उपवास), अष्टम (तीन उपवास) इत्यादि तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। यावत् प्रथम शतक के नौवें उद्देशक में वर्णित कालास्यवेसी पुत्र की तरह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् समस्त दुःखों से मुक्त हुए।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।

उक्त आगम पाठ में तेजोलेश्या के पुद्गलों के लिए अचित्त प्रकाश तापक पुद्गल कहा है न कि अचित्त तैजस्काय, जबकि प्रज्ञापना एवं उत्तराध्ययन सूत्र के निम्न पाठों में विद्युत् (बिजली) को स्पष्ट बादर अग्निकाय कहा है।

तेऊकाय के दो रूप

तेऊकाय जीवों के दो रूप हैं - सूक्ष्म और बादर अर्थात् स्थूल। प्रज्ञापना सूत्र में बादर तेऊकाय का विवेचन इस प्रकार किया गया है -

से किं ते बायर तेउकाइया? बायर तेउकाइया अनेगविहा पण्णत्ता, तंजहा - इंगाले (अंगारे), जाला (ज्वाला), मुम्मुरे (मुर्मुरा-मींगनों की आग) अच्चि (लपटें) अलाए (मशाल की आग), सुद्धागणि (लोह-पिण्ड आदि में व्याप्त निर्धूम अग्नि) उक्का (उल्का अर्थात् चिनगारियां) विज्जु (विद्युत्) असणि (बादलों में चमक के साथ होने वाला प्रकाश) णिग्घाए (भयंकर शब्द के साथ उत्पन्न आग), संघरिस-समुट्ठिए (संघर्ष से उत्पन्न आग) सूरकंत मणि णिस्सिए (आतशी शीशे आदि से उत्पन्न आग), जेयावण्णे तहप्पगारा (और जिनका वर्णन नहीं किया जा सका ऐसे अन्य अनेक प्रकार के बादर तेउकाय जीव हैं)।

उत्तराध्ययन सूत्र के ३६वें अध्ययन की १११ वीं गाथा में विद्युत् (बिजली) को बादर अग्निकाय बतलाया है।

उक्का विज्जू य बोधव्वा, णेगहा एवमायओ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया॥१११॥

भावार्थ - उल्कापात की अग्नि और **विद्युत् की अग्नि अर्थात् बिजली** इस प्रकार अग्नि के अनेक भेद जानने चाहिए। वे

सूक्ष्म अग्निकाय के जीव, अनानात्व-नाना भेद-रहित एक ही प्रकार के कहे गये हैं।

इस प्रकार आगम में तेजोलेश्या के पुद्गलों को अचित्त, प्रकाशक तापक पुद्गल और विद्युत (बिजली) को सचित्त अग्निकाय का अलग-अलग स्पष्ट उल्लेख है, तो फिर आचार्य श्री का तेजो लब्धि के पुद्गलों के लिए यह कहना कि "अब उसे अग्नि कह दे या आज की भाषा में विद्युत् वह सजीव नहीं।" कितना मनगढंत और अनागमिक है? जब आगमकार तेजोलेश्या को अचित्त प्रकाश तापक पुद्गल एवं विद्युत् (बिजली) को बादर सचित्त अग्निकाय विभिन्न उक्त आगम पाठों से स्पष्ट बता रहे हैं तो फिर आप किस आधार से तेजोलेश्या के पुद्गलों को अग्नि या विद्युत (बिजली) का रूप दे रहे हैं। समझ में नहीं आता। तेजोलेश्या के पुद्गलों की निर्जीवता से विद्युत् (बिजली) की निर्जीवता सिद्ध नहीं होती। ऐसा कहना उक्त आगम पाठों का अपलाप करना है।

इसके अलावा गोशालक प्रसंग में वेश्यायन बाल तपस्वी को आगमकार ने सूर्य की आतापना लेना बताया है न कि "पंचाग्नि ताप" जैसा कि आपने अपनी विज्ञप्ति में लिखा। अतएव यह संदर्भ भी सही नहीं है।

विज्ञप्ति अंश नं० ५. :- 'बिजली अग्नि नहीं है, इसका एक कारण तो यह है कि वह बिना वायु के जलती है। भगवती सूत्र में कहा गया है - 'न विना वाउकाएण अग्गी पज्जलई।' वायु के बिना अग्नि जलती नहीं है। अग्नि को हमेशा ऑक्सीजन चाहिए। वायु नहीं मिलेगी, अग्नि नहीं जलेगी। ऊर्जा तो होगी, किन्तु अग्नि नहीं जलेगी। जहाँ बिजली का प्रसंग है, वहाँ वैक्यूम करना होता है। वायु का निष्कासन

जरूरी है वहाँ। वहाँ ऑक्सीजन का सुयोग मिल जाए तो वह आग का रूप ले सकती है। किन्तु जहाँ ऊर्जा नहीं, वहाँ अग्नि नहीं है।'

समीक्षा :- इस विज्ञप्ति अंश में आचार्य श्री ने विद्युत् (बिजली) को अग्नि होना इसलिए नहीं स्वीकारा है क्योंकि बिना वायु के अग्नि जलती नहीं और बिजली बिना वायु के भी जलती है। बिजली प्रज्ज्वलन के लिए वायु का निष्कासन (वैक्यूम) आवश्यक है। इसके लिए आपने भगवती सूत्र का संदर्भ दिया।

जिस प्रकार पृथ्वी, पानी, वायु, वनस्पति में अपनी अपनी काय में अपने ही भिन्न-भिन्न भेदों में भिन्न-भिन्न गुण स्वभाव, लक्षण होते हैं। इसी प्रकार अग्नि-अग्नि में स्वभाव भिन्नता हो सकती है। स्वभाव भिन्नता के कारण बिजली अचित्त नहीं हो सकती है। जिस प्रकार पृथ्वी में घुलनशीलता, अघुलनशीलता आदि विरोधी धर्म पाये जाते हैं। पानी में उष्णयोनिक, शीतयोनिक आदि विरोधी धर्म पाये जाते हैं। बादलों को बिखेरने वाली, बादलों को लाने वाली, रोग बढ़ाने वाली, रोग घटाने वाली परस्पर विरोधी दिशा की इस प्रकार अनेक प्रकार के विरोधी स्वभाव वाली वायु देखी जाती है। वनस्पति में भी उष्णवीर्य, शीतवीर्य परस्पर विरोधी वर्ण, गंध, रस स्पर्श वाली वनस्पति देखी जाती है। इन सबसे स्वभाव आदि आहार भी एक सरीखा नहीं होकर विरोधी भी होना है। इसी प्रकार अग्नि भी विरोधी धर्म वाली होना आगम से बाधित नहीं है। काष्ठादि ईंधन वाली अग्नि को ही आक्सीजन की आवश्यकता रहती है। भिन्न स्वभाव की होने से विद्युतीय अग्नि को आवश्यकता नहीं रहती है।

भगवती सूत्र के सोलहवें शतक के प्रथम उद्देशक में 'इंगालकारिया' (लोहे की सिगड़ी जो कोयले से जलती है) की अग्नि का उल्लेख है उसके लिए निम्न पाठ है -

प्रश्न - इंगालकारियाए णं भंते! अगणिकाए केवइयं कालं संचिट्ठइ?

उत्तर - गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं। अण्णे वि तत्थ वाउयाए वक्कमइ, ण विणा वाउयाएणं अगणिकाए उज्जलइ।

प्रश्न - हे भगवन्! सिगड़ी में अग्निकाय कितने काल तक सचित्त रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन रात-दिन तक सचित्त रहता है। वहाँ अन्य वायुकायिक जीव भी उत्पन्न होते हैं। क्योंकि वायुकाय के बिना अग्निकाय प्रज्वलित नहीं रहता।

यहाँ पर अग्नि के एक प्रकार वर्णन है। उसके लिए ही वायुकाय की आवश्यकता मानी है। साथ ही वहाँ अन्य वायुकायिक जीवों का उत्पन्न होना भी बतलाया है। इस पाठ को विद्युतीय अग्नि के लिए खींचना, आगम संदर्भ के अनुरूप नहीं है। यदि इस पाठ को सभी प्रकार की अग्नि के लिए समझेंगे, तो सूक्ष्म अग्नि के लिए भी समझना होगा, जो कि सर्व लोक में व्याप्त है। सर्वत्र **आक्सीजन मानने पर वैक्यूम बल्बों में भी ऑक्सीजन मानना होगा।** जिसका पूर्व पक्ष निषेध करता है एवं इसी हेतु से विद्युत् (बिजली) को अचित्त सिद्ध करना चाहता है। आगम में ऑक्सीजन का उल्लेख न होकर मात्र वायु का ही उल्लेख है। पन्नवणा सूत्र के दूसरे स्थान पद में पर्याप्त बादर वायुकाय को **''सव्वेसु चेव लोगागासछिद्देसु लोगणिक्खुडेसु य''** पोलार में सर्वत्र बादर वायुकाय माना है। बल्ब में भी पोलार स्पष्ट नजर आती है। अतएव इस आगम पाठ से उन में (बल्ब-ट्यूब लाईट

आदि) में बादर वायुकाय है ही। आचार्यश्री का यह कहना की बिना वायु जलती नहीं और उसके लिए भगवती सूत्र का उक्त उद्धरण देना अप्रासंगिक एवं अनागमिक है।

२. बल्ब के अंदर बिजली का प्रवाह टंगस्टन वायर के माध्यम से होता है। जब टंगस्टन वायर के द्वारा बिजली के करोड़ों इलेक्ट्रॉन्स का प्रवाह हो सकता है तो वहाँ बादर वायुकाय के प्रवेश में कोई बाधा नहीं हो सकती। क्योंकि भगवती सूत्र शतक १९ उद्देशक ३ में जहाँ स्थावर जीवों की अवगाहना का अल्पबहुत्व बतलाया गया है वहाँ बादर तेउकाय से बादर वायुकाय की अवगाहना अनंतगुणा हीन कही है। अतएव बल्ब के अंदर बादर वायुकाय मानने में आगमिक बाधा आती ही नहीं है। वैसे भी प्रज्ञापना सूत्र में पोलार में सर्वत्र बादर वायुकाय मानी है। अतएव महाप्रज्ञ जी का यह कथन कि ''बल्ब पूर्णरूपेण हवा रहित है'' अनुचित एवं अनागमिक है।

विज्ञप्ति अंश ६. :- सूर्य का ताप कितना भयंकर होता है। आज तो सौर ऊर्जा का प्रयोग भी होने लगा है। चूल्हा भी जलता है, रसोई भी बनती है और भी अनेक कार्य होते हैं। पर वह सारी निर्जीव अग्नि है। वह सजीव अग्नि नहीं है। विद्युत है, अग्नि नहीं है। सौर ऊर्जा या जो भी ऊर्जा है, वह तैजस परमाणु है, यानी तैजस वर्गणा है, परमाणु है। इसलिए आगम में इन्हें अग्निसदृश द्रव्य कहा गया है, अग्नितुल्य द्रव्य। अग्नि जैसा द्रव्य है, इसलिए इसका नाम अग्नि रखा गया है। जयाचार्य ने भगवती की व्याख्या में कहा-अग्नि द्रव्य सरीस-अग्नि जैसा द्रव्य। यह अग्निकायिक जीव नहीं है। विद्युत् एक ऊर्जा का प्रवाह है। यह सारा निर्णय हो गया। इस निर्णय के आधार पर फिर यह घोषणा भी गुरुदेव ने कर दी कि बिजली हमारी दृष्टि में अचित्त है,

निर्जीव है। शास्त्र के अनेक आधारों पर यह सिद्ध हो गया कि अग्नि जीव नहीं मात्र ऊर्जा है। तैजस वर्गणा के पुद्गल हैं, इसलिए निर्जीव है। यह हमारी मान्यता है।

जैनों में भी कुछ लोग इसे सजीव मानते हैं। यह तो अपना-अपना विचार है। अगर कोई खोज न करे तो परम्परा से जो चल रहा है, वह माना जाता है। हमने तो चिन्तन किया, खोज की, अनुसंधान किया, प्रमाण ढूंढे और इतने प्रमाण उपलब्ध किए आगम के, जिनके आधार पर यह स्थापना करने में हमें कोई संकोच नहीं हुआ। यह कोई संशय में नहीं किया कि अचित्त है या नहीं? अनुसंधान के आधार पर अच्छी तरह निश्चित हो गया कि यह मात्र पुद्गल है, ऊर्जा है, एक शक्ति है, अग्निकायिक जीव नहीं है।

समीक्षा - इस विज्ञप्ति अंश में आचार्य श्री ने सौर ऊर्जा से विद्युत् (बिजली) की तुलना कर इसे अचित्त निर्जीव होना बतलाया। सौर ऊर्जा की विशेषता बतलाते हुए आपने लिखा सौर ऊर्जा के ताप से चूल्हा जलता है, रसोई बनती है और अनेक कार्य होते हैं, पर यह सारी निर्जीव है, सौर ऊर्जा तैजस वर्गणा के पुद्गल हैं, **तैजस वर्गणा के पुद्गल होने से आगम में इन्हें अग्नि सदृश्य द्रव्य कहा है, अग्नि तुल्य, अग्नि जैसा द्रव्य कहा है इसलिए इसका नाम अग्नि रखा गया है।**

कौन से आगम में कहा है? इसका कुछ भी संदर्भ न देकर आपने आगम का नाम लेकर सौर ऊर्जा की जो विशेषताएं बतलाई वह आगम में कहीं है ही नहीं, बल्कि सभी बातें आगम से विपरीत है। आगम में "**सूरकंतमणिणिस्सिए**" कह कर सौर ऊर्जा से भी बादर अग्निकाय जीव उत्पन्न होना बताया है। इसीलिए बहिर्गोलक कांच के

नीचे रखा कागज सूर्य की किरणों के केन्द्रित होने से जलने लग जाता है, जो सजीव अग्निकाय है। क्योंकि कागज घास फूस की अग्नि को सभी ने सजीव माना है। इसी प्रकार यंत्रों के माध्यम से सौर ऊर्जा (ताप) को विद्युत् में परिवर्तित कर देने पर वह भी कागज की अग्नि की भांति बादर विद्युतीय अग्नि बन जाती है। जो आगम निर्देशानुसार सजीव होती है। सौर ऊर्जा से सीधे भोजन पानी को चूल्हों में रख देने पर अग्नि की योनि नहीं बनने से उस तापमान में भोजन तो पक जाता है पर अग्नि नहीं बन पाती। साथ ही ज्यादा ताप लगने पर भोजन सूख जाता है पर जलता नहीं है। अग्नि की योनि बनने के लिए तापमान की अमुक मात्रा की आवश्यकता रहती है। वह भोजन पानी में संभव नहीं होने से अग्नि के जीव उत्पन्न नहीं हो पाते हैं। कागज आदि में वह तापमान संभव होने से उनमें आग उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार बांस, अरणि आदि अमुक प्रकार के द्रव्य भी संघर्ष से तापमान को प्राप्त करके अग्नि की योनि बन जाते हैं। ये द्रव्य योनि के सहयोगी होने से कम तापमान में भी अग्नि जीवों को उत्पन्न कर देते हैं। आगमकार (प्रज्ञापना सूत्र) वहाँ पर "**संघर्ष समुस्थित**" बादर अग्नि मानते हैं इस प्रकार आगमकारों ने सौर ऊर्जा में बादर अग्निकाय जीव उत्पन्न होना बतलाया है।

सौर ऊर्जा के लिए आगे आप लिखते हैं कि सौर ऊर्जा या जो भी ऊर्जा है वह तैजस परमाणु है, यानी तैजस वर्गणा है, परमाणु है। इसलिए आगम में इन्हें अग्नि सदृश्य कहा गया है, अग्नि तुल्य द्रव्य। अग्नि जैसा द्रव्य है, इसलिए इसका नाम अग्नि रखा है। आपने अपनी इसी विज्ञप्ति में नरक लोक की पृथ्वी एवं तेजोलेश्या के पुद्‌गलों के लिए भी तैजस वर्गणा के पुद्‌गलों का

जिक्र किया जिसका समाधान हमने अपनी समीक्षा नम्बर २ एवं ४ में कर दिया। पुनः आचार्यश्री ने सौर ऊर्जा के लिए भी उन्हीं तैजस वर्गणा के पुद्गलों का राग अलापा है कि तैजस वर्गणा के पुद्गलों को "आगम में अग्नि दृश्य कहा गया है, अग्नि तुल्य द्रव्य। अग्नि जैसा द्रव्य है। इसलिए इसका नाम अग्नि रखा गया है।"

वस्तुतः आगम वर्णित आठ वर्गणाओं में से तैजस वर्गणा के पुद्गल न तो चक्षुग्राह्य है और न ही आगम में इन्हें अग्नि सदृश्य कहा है। जो पुद्गल आँखों से दिखते ही नहीं हैं उन्हें आगमकार कैसे अग्नि सदृश्य एवं इनका नाम अग्नि रक्खा कहेंगे। विशेषावश्यक भाष्य गाथा ६३१-६३७ में तैजस वर्गणा के पुद्गलों का कार्य मात्र तैजस शरीर में परिणत होना बतलाया है। जिन तैजस वर्गणा के पुद्गलों का ऊर्जा अग्नि से कोई लेना देना ही नहीं, जो पुद्गल चक्षुग्राह्य नहीं उनके लिए आगम की दुहाई देकर आप बार-बार दोहराते हैं कि तैजस वर्गणा के पुद्गल अग्नि सदृश्य है, अग्नि तुल्य है, इसलिए इनका नाम अग्नि रक्खा गया है। कितना अनुचित एवं अनागमिक है।

आचार्य प्रवर! किसी आगम पाठ का उद्धरण करके इसका इतना राग अलापते तो ठीक भी था कि अमुक आगम पाठ में तैजस वर्गणा के पुद्गलों को अग्नि तुल्य द्रव्य कहा, जिससे आपने इनका नाम अग्नि रक्खा है। तैजस वर्गणा के पुद्गलों का अग्निकाय से बिन्दु मात्र भी सम्बन्ध नहीं, वहाँ आगम की दुहाई देकर उसे सिन्धु रूप देना तथा उसे विद्युत् (बिजली) की अचित्तता, निर्जीवता के लिए उद्धरित करना, आगम की कितनी महान् अवहेलना है। कृपया इस पर विचारणा करावें।

सूर्य के विमान के पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नाम कर्म का

उदय होने से ही सूर्य तपता है। अतः सूर्य ऊर्जा एवं उनसे उत्पन्न होने वाली विद्युत् आदि को औदारिक वर्गणा के पुद्गल समझना चाहिये, न कि तैजस वर्गणा के पुद्गल। तैजस वर्गणा के पुद्गलों से तो मात्र तैजस शरीर का निर्माण होता है। जो शरीर सभी संसारी जीवों के होता है एवं अचक्षुग्राह्य होता है, उसे "अग्नि सदृश्य" बताना क्या हास्यप्रद नहीं है?

आपश्री आगे फरमाते हैं कि जयाचार्य ने भगवती की व्याख्या में कहा कि अग्नि द्रव्य सरीस-अग्नि जैसा द्रव्य। जयाचार्य श्री ने भगवती सूत्र की व्याख्या में जिसे अग्नि द्रव्य सरीस-अग्नि जैसा द्रव्य कहा वह तैजस वर्गणा के पुद्गलों के लिए नहीं बल्कि भगवती सूत्र शतक ७ उद्देशक १० में वर्णित तेजोलब्धि के पुद्गलों के लिए कहा होना चाहिए, जिन्हें स्वयं आगमकार ने अचित्त प्रकाश तापक पुद्गल कहा है, जो चक्षुग्राह्य है। जिसका संदर्भ मेरे द्वारा समीक्षा नं० ४ में दिया गया है। अतएव आचार्य प्रवर तैजस वर्गणा के पुद्गल एवं तेजोलब्धि के पुद्गल दोनों अलग-अलग हैं और जिनका कार्य भी अलग-अलग है। एक लब्धिधारी मुनि द्वारा कुपित होने पर निकाले गए तेजोलेश्या के पुद्गल हैं, जो व्यक्ति विशेष को जलाने के लिए अपने शरीर में से निकाले जाते हैं। जबकि तैजस वर्गणा के पुद्गल सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है जिनका काम चौबीस ही दण्डक के जीवों के तैजस शरीर में परिणित होना है। जिन पुद्गलों का जो कार्य नहीं, उसे अपनी बात सिद्ध करने के लिए उद्धरित करना क्या उचित एवं आपके पद के अनुरूप है? हमारे प्राचीन व्याख्याकार तो कहते हैं-"**जं जइ सुत्तेभणियं, तहेव तं जइ वियालणाणत्थि। किं कालियाणुओगो, दिट्ठो दिट्ठिप्पहाणे हि।**" अलग-अलग स्थान पर आये हुए पाठ

अलग-अलग अपेक्षा लेकर होते हैं। उनको जाने बिना आगम पाठों का अर्थ करने से वे परस्पर विसंगत होने के साथ-साथ अनर्थ कर डालते हैं। आपकी विज्ञप्ति में ऐसा ही हुआ है।

जयाचार्यश्री तैजस वर्गणा के पुद्गलों को जो चक्षुग्राह्य नहीं, जिनका अग्नि से कोई लेना-देना नहीं, उन्हें कदापि "**अग्नि द्रव्य-सरीस-अग्नि जैसा द्रव्य, वह अग्निकायिक जीव नहीं है। विद्युत् एवं ऊर्जा का प्रवाह है" कह ही नहीं सकते**। इसकी हमें पूर्ण खातरी है। यदि उन्होंने ऐसी व्याख्या की है तो कृपा करके भगवती सूत्र का वह स्थल एवं उनके द्वारा की गई व्याख्या को समाज के सामने रखने की महरबानी करें। ताकि समाज को सच्चाई का पता लगे।

बंधुओ! सर्वज्ञ के वचन कभी भी परस्पर भिन्नता लिए हुए होते ही नहीं, जिन वचनों में परस्पर भिन्नता होती है, वे सर्वज्ञ के वचन हो ही नहीं सकते। जिस विद्युत् (बिजली) को आगमकार ने नामोल्लेख पूर्वक बादर अग्निकाय कह दिया, फिर उस विद्युत् (बिजली) की निर्जीवता के लिए आगम पाठ मिलेगा ही कहां से? नरक की पृथ्वी की उष्णता, वैक्रिय की अग्नि, तेजोलब्धि के पुद्गलों, ऊर्जा, तैजस वर्गणा के पुद्गलों आदि के प्रमाण आपने जो विद्युत् (बिजली) की अचित्तता निर्जीवता के लिए दिये वे तो पूर्णरूपेण अनागमिक प्रमाण हैं। ये प्रमाण तो आगम से पूर्णरूपेण बाधित हैं, खण्डित है। आगम से अनभिज्ञ व्यक्ति इस प्रकार की बातें कहें तो कोई आश्चर्य नहीं। पर आप जैसे विद्वान् दार्शनिक आचार्य के द्वारा इस तरह के बेतुके प्रमाण और वह भी आगम के नाम से देना क्या कम आश्चर्य की बात है?

आपने बिजली की अचित्तता-निर्जीवता के लिए आगम के

जो संदर्भ दिए, उन आगमों में उनका कहीं नामोनिशान ही नहीं है। चाहिए तो आपको यह था कि आप आगम का नाम देने के साथ उस संदर्भ स्थल यानी मूल पाठ को उसके अर्थ के साथ उद्धरित करते तो उसका महत्त्व भी होता। जैसा कि हमने बिजली की सचित्तता एवं बिजली बादर तेऊकाय है के लिए आगम के मूल पाठ के साथ उसका अर्थ भी दिया, जिससे पाठक चाहे तो उसे आगम में मिलान कर सके।

आगे आचार्यश्री लिखते हैं हमनें चिंतन किया, खोज की, अनुसंधान किया, प्रमाण ढूंढे और इतने प्रमाण उपलब्ध किये, आगम आधार पर यह स्थापना करने में हमें कोई संकोच नहीं हुआ कि बिजली निर्जीव है। आचार्य प्रवर आपने खोज, अनुसंधान, प्रमाण, आगम आदि की सभी बातें अपनी विज्ञप्ति में तो लिख डाली। पर क्या खोज की, अनुसंधान किया, प्रमाण ढूंढे, आगम आधार आदि का आपनें अपनी विज्ञप्ति में कही दर्शन ही नहीं करायें। जिन आगमों का आपने नाम दिया, उन आगमों में कहीं पर भी शब्द मात्र भी विद्युत् (बिजली) की निर्जीवता के लिए नहीं है। अब आप ही बतावें कि पाठक आपकी खोज, अनुसंधान, प्रमाण आदि की प्रामाणिकता की जांच पड़ताल करे तो कहाँ करे, कैसे करे?

आचार्य प्रवर! आपने आगम का संदर्भ स्थल आदि उद्धरित न करके मात्र आगम का नाम दे दिया, पर उन आगमों को पूरे टटोलने पर कहीं पर भी एक भी शब्द नहीं मिलता जो बिजली को निर्जीव सिद्ध करता हो। आगम तो "विद्युत् (बिजली)" शब्द का नामोल्लेख करके उसे बादर अग्निकाय कहता है। आपके द्वारा उसका कुछ भी निराकरण किए बिना 'यह सारा निर्णय हो गया। सिद्ध हो गया।'

इत्यादि निश्चयात्मक शब्दों का प्रयोग करना एक विद्वान् आचार्य के लिए शोभाप्रद नहीं है। हमारी मान्यता कहना अलग बात है और आगम (शास्त्रों) से सिद्ध हो गया, कहने में बहुत अन्तर है। शास्त्रों से सिद्ध हो गया कहने पर आपको सम्पूर्ण जैन समाज को जो आगमों पर विश्वास रखता है, उनको आगम पाठ का स्पष्ट उद्धरण कर इसका निराकरण करना आवश्यक ही नहीं अपितु नैतिक जुम्मेवारी भी है। अतएव आपसे निवेदन है कि आप बिजली की निर्जीवता के लिए आगम का मूल पाठ समाज के सामने रखने की कृपा करे।'

विज्ञप्ति अंश नं० ७. :- अपनी-अपनी परम्परा होती है। कुछ लोग ध्यान नहीं देते तो क्या कहा जाए? हाथ में घड़ी बंधी है, तो भी कहते हैं कि सजीव है। घड़ी में बैट्री है। बैट्री है क्या? ऊर्जा का एक स्पन्दन ही तो है। एक रासायनिक स्पन्दन और एक ऊर्जा का स्पन्दन। वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो बैट्री मात्र ऊर्जा का स्पन्दन है। रसायनिक क्रिया होती है, उससे वह चलती है। सारे इलेक्ट्रोन स्पन्दन ही तो हैं। जुगनूं चमकता है तो आग जैसा लगता है, किन्तु वह आग तो नहीं है। औरों की बात छोड़ दें, हमारे शरीर में भी अग्नि है, पर वह सजीव नहीं, निर्जीव अग्नि है। हमारे शरीर में भी पौद्गलिक अग्नि है। आयुर्वेद को जानने वाला जठराग्नि को जानता है। भोजन करते हैं, वह किससे पचता है? जठराग्नि से पचता है। हमारे जठर यानी पेट की जो अग्नि है, उससे हमारा भोजन पचता है। जब कोई बीमार होता है तो वैद्य उसकी परीक्षा कर कभी-कभी कहते हैं-इसकी अग्नि मंद हो गई है। खाया हुआ पच नहीं रहा है। अग्नि जब तक ठीक रहे, भोजन का ठीक पाचन होता है, वह मंद हो जाए तो भोजन का पाचन नहीं हो पाता। हमारे शरीर में भी अग्नि है, विद्युत् (बिजली) है। शरीर शास्त्र

की दृष्टि से देखें तो हर कोशिका का अपना पावर हाउस है। बालोतरा में तो कोई एक-दो पावर हाउस होगा, पर हमारे शरीर की तो हर कोशिका में एक पावर हाउस है। अरबों कोशिकाएं और हर कोशिका का अपना पावर हाउस। इतनी अग्नि भरी पड़ी है शरीर के भीतर। यह बड़ी अद्भुत बात है कि शरीर की अग्नि कभी लीक नहीं होती। यदि हो जाए तो पूरे शरीर में जलन हो जाती है। शरीर अंगारा जैसा हो जाता है। ऐसे कई केस आए प्रेक्षाध्यान शिविरों में कि शरीर पूरा जलने लग गया।

हमारे शरीर में भी अग्नि है। यह सब तैजस वर्गणा के परमाणु हैं, पुद्गल हैं। अब प्रश्न है कि चाहे माइक हो, चाहे घड़ी हो, हम उसे सचित्त नहीं मान सकते। आगम के आधार पर उसे सजीव नहीं सिद्ध किया जा सकता। इसलिए पूरी स्पष्टता रहे। बहुत से भाई आते हैं और कहते हैं कि घड़ी बंधी हुई है, संघट्टा करें या न करें? घड़ी हाथ में बंधी हुई है, बहराएं या न बहराएं? नहीं बहराओ तो आपकी इच्छा। हमें कोई आपत्ति नहीं है। वंदना करने में स्पर्श करो या नहीं, आपकी इच्छा, पर हमें कोई सैद्धान्तिक आपत्ति नहीं है। क्योंकि उसे हम सजीव नहीं, मात्र ऊर्जा मानते हैं।

समीक्षा :- इस विज्ञप्ति अंश में आचार्य श्री ने विद्युत् (बिजली) को अचित्त ऊर्जा सिद्ध करने के लिए अनेक उदाहरण दिए, किन्तु उनके एक भी उदाहरण बिजली की अचित्तता से सम्बन्ध नहीं रखते हैं।

सबसे पहले आप लिखते हैं "अपनी अपनी परम्पराएं होती हैं। कुछ लोग ध्यान नहीं देते तो क्या कहा जाए?" आचार्य प्रवर! विद्युत् को सचित्त तेऊकाय कहना अपनी अपनी परम्परा नहीं बल्कि प्रभु

महावीर द्वारा प्ररूपित मूल आगम पाठ है, जिसमें इसे नामोल्लेख पूर्वक सचित्त तेऊकाय बतलाया गया है, जिसका उल्लेख हमने पूर्व में कर दिया है। इसे अपनी अपनी परम्परा कहना मिथ्या तो है ही साथ ही आगम वाणी का अपलाप करना है। हाँ आपकी एक दो पीढ़ी ने अपनी सुख सुविधा के पोषण के लिए इस ओर अवश्य ध्यान दिया और इसे विद्युत् (बिजली) अचित्त ऊर्जा करार देकर अपनी परम्परा बना डाली अन्यथा आपके पूर्वज इसे विद्युत् (बिजली) आगम विधानानुसार बादर तेऊकाय ही मानते आए हैं। खैर आपके इस साहस पूर्ण, आगम विरुद्ध अनुसंधान, खोज ने जैन जगत में एक नवीन आविष्कार को जन्म दिया है।

इसके बाद आपने बैट्री एवं सारे इलेक्ट्रोन को वैज्ञानिक आधार से एक रसायनिक एवं ऊर्जा स्पंदन बतलाया। जब आप विद्युत् (बिजली) को अग्नि मानते नहीं तो फिर बैट्री और इलेक्ट्रोन को तो अग्नि रूप मानने का प्रश्न ही कहां? पर आगम प्रमाणों से जब विद्युत् (बिजली) सचित्त तेऊकाय स्पष्ट सिद्ध है, तब बैट्री जिससे विद्युत् (बिजली) उत्पन्न होती है एवं उससे घड़ी आदि अनेक यंत्र चलते हैं, उन घड़ी आदि उपकरणों को सजीव अग्निकाय मानना तथा उनका पानी, धान्यादि की तरह संघट्टा टालना भी आगम विहित है। वैज्ञानिक तो मानव शरीर को भी निर्जीव मानता है? वैज्ञानिकों का जीवों के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्णय ही नहीं है। अतएव आध्यात्मिक क्षेत्र में विज्ञान का उद्धरण देकर अपनी बात सिद्ध करना कोई महत्त्व नहीं रखता है।

आगे आपने शरीर की जठराग्नि को निर्जीव बताकर बिजली की निर्जीवता के लिए उसका उदाहरण प्रस्तुत किया। आचार्य प्रवर! हमारे शरीर की अग्नि, जठराग्नि भी भले अग्निकायिक जीव नहीं है,

तथापि यह निर्जीव नहीं जैसा कि आपने लिखा। उसमें हमारा ही जीव है। प्रत्येक कोशिका की ऊर्जा हमारे ही जीव रूप होने से सजीव है। वह ऊर्जा सजीव होते हुए भी विद्युत् अग्निकायिक जीव रूप नहीं है इसीलिए इसका संघट्टा नहीं टाला जाता है। सूर्य के ताप से विद्युत् (बिजली) पैदा करना जैसा आगम विहित है, वैसे ही हमारे शरीर से भी विद्युत् (बिजली) पैदा करना आगम विहित है। शरीर की ऊर्जा को विद्युत् (बिजली) रूप में परिवर्तित करने पर योनि हो जाने से अग्नि कायिक जीव उत्पन्न हो जाते हैं। सूत्रकृतांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के तीसरे आहार परिज्ञा अध्ययन में त्रस जीवों के सचित्त तथा अचित्त शरीर में अग्निकायिक जीवों का उत्पन्न होना बताया है। जुगनू का शरीर उद्योत नाम कर्म के उदय से चमकता है एवं सजीव है। विद्युत (बिजली) का इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

यद्यपि व्याख्या साहित्यों में तैजस शरीर को आहारपाक का हेतु बताया है, जिसे आयुर्वेदान्त भाषा में जठराग्नि कहा जाता है। वह जठराग्नि भी सजीव होती है। जठराग्नि जब स्वयं सजीव है, तो फिर इसका उदाहरण देकर विद्युत (बिजली) को निर्जीव बताना कौनसी बुद्धिमत्ता है, इसे कैसे संगत कहा जा सकता है? लोकभाषा में जठराग्नि को भले ही अग्नि कहा जाता है पर आगम भाषा में नहीं। जबकि विद्युत् (बिजली) को आगम भाषा में बादर तेजस्काय कहा है। वास्तव में आगम पाठों से तो विद्युत् निर्जीव सिद्ध होती ही नहीं है। इसीलिए आपने इधर-उधर के उल्टे-सीधे उदाहरण देकर अपनी मान्यता को सिद्ध करने का प्रयास किया है। जो आगम के जानकारों के लिए महत्त्वहीन है। अतएव आपका मानव शरीर के आहार पाचन रूप तैजस शरीर से विद्युत् को अचित्त सिद्ध करने की बात कहना हास्यप्रद

है। इसके अलावा विद्युत् (बिजली) की निर्जीवता के लिए बात-बात में तैजस वर्गणा के पुद्गलों को घसीटना महत्त्वहीन है। तैजस वर्गणा के पुद्गल क्या हैं? इनका क्या काम है? इसका स्पष्टीकरण हमने पूर्व में विस्तार से दे दिया है।

बंधुओ! जिन भाई-बहनों को विद्युत् (बिजली) की सचित्तता अचित्तता के संस्कार होंगे, वे विद्युतीय घड़ी या अन्य उपकरण पास में होने पर साधुओं के संघट्टा (स्पर्श) करना, नहीं करना, बहराना, नहीं बहराना इत्यादि प्रश्न तो करेंगे ही। सैद्धान्तिक बाधाएं इनके लिए क्या है, यह ऊपर बता दी गई है। आप विद्युत् को सजीव नहीं मानकर मात्र ऊर्जा माने, यह आपके निजी विचार है, आगमिक विचार नहीं है। जैन आगम तो इन्हें सचित्त बादर तेजस्काय मानता है इसीलिए इनका संघट्टा टालने की मान्यता देता है। चार्वाकादि कई दर्शनों वाले मनुष्य में भी जीव नहीं मानते, ये उनके मन के अपने विचार हैं, जैन दर्शन की यह मान्यता नहीं है। इसी प्रकार आप बिजली युक्त उपकरणों का संघट्टा न टालें तो यह आपकी अपनी निजी मान्यता है, इसे आगम आधार अथवा सैद्धान्तिक आपत्ति नहीं होना कहना आगमपाठों की अवहेलना करना है।

विज्ञप्ति अंश नं० ८. :- एक कठिनाई जरूर है हमारे सामने। परम्पराएं अलग-अलग होती हैं, आचार्य अलग-अलग होते हैं। मैं जो मानता हूँ, वह बात सही है, जो मैं नहीं मानता वह सारी गलत है। ऐसा भ्रम पैदा कर देते हैं। यह कोई संगत बात नहीं है। पहले खोज करनी चाहिए, अनुसंधान करना चाहिए। हमारे सामने प्रश्न आया। कुछ कन्याओं ने शायद महाश्रमणजी से प्रश्न पूछा कि काजू-बादाम देना सन्तों को कल्पता है या नहीं? अब यह सिद्धान्त कहां से आया?

सिद्धान्त तो एक ही है कि जो शाकाहार है, शुद्ध भोजन है, जो निर्जीव है, वह साधु के लिए कल्पता है। चाहे काजू हो, चाहे बादाम हो, चाहे बाजरे की रोटी हो। अचित्त सारा कल्पता है। जो शाकाहार है, भक्ष्य है, अभक्ष्य नहीं है, यह सारा कल्पता है। कोई नहीं खाए अच्छी बात है। कोई फलका नहीं खाए तो और अच्छी बात है। अभी यहाँ एक संन्यासी आया था। पता चला कि वह कई वर्षों से अन्न नहीं ले रहा है। साधना की दृष्टि से वह प्रयोग कर रहा है, यह अच्छी बात है। हम यह नहीं कहते कि सारा ही खाना है। पर लेने में दोष कहा जाए, यह गलत बात है। कोई दोष नहीं है। हमारे बहुत से साधु-साध्वियाँ हैं, जो छह विगय नहीं खाते। न दूध, न दही, कुछ भी नहीं। अच्छी बात है। अपनी-अपनी साधना है। खाद्य संयम करें, त्याग करें, इसमें आपत्ति नहीं, यह तो बड़ी अच्छी बात है। पर यह कहें कि दूध पीना दोषपूर्ण बात है, यह एक तरह की भ्रान्ति पैदा करना है। ऐसा नहीं करना है, दोष नहीं बतलाना है।

समीक्षा :- इस विज्ञप्ति अंश में आचार्य श्री ने दो तीन ऐसी बातों का समावेश किया जिनकी बिजली की सचित्तता अचित्तता से कोई सम्बन्ध नहीं। आप लिखते हैं - ‘‘परम्पराएं अलग-अलग होती हैं, आचार्य अलग-अलग होते हैं। मैं जो मानता हूँ, वह बात सही है, जो मैं नहीं मानता वह सारी गलत है। ऐसा भ्रम पैदा कर देते हैं।’’ आचार्य प्रवर! आपका यह कथन बराबर नहीं है। संघीय व्यवस्थाओं के लिए तथा गण के आचार संरक्षण के लिए उस समय के बहुश्रुत आचार्य, गण संस्थितियों का निर्माण करते हैं, वे गण संस्थितियाँ आगे चल कर परम्परा बन जाती है, जो परम्पराएं बनती हैं, वे सभी परम्परायें आगम पूरक होती है, आगम विरुद्ध नहीं। कोई भी सुज्ञ

व्यक्ति **"मैं जो मानता हूँ वह बात सही है, जो मैं नहीं मानता वह सारी गलत है।"** इस प्रकार कभी नहीं कहेगा। वह आगम प्रमाणों से अपनी बात को सत्यापित करके उसका औचित्य एवं अन्य बात आगम से सत्यापित नहीं होने के कारण उसका अनौचित्य बताने का प्रयास करेगा। मतभेद (चर्चास्पद) वाली बातों को समझाने के लिए शालीन एवं आगमीय तरीका तो यही है। अन्यतीर्थियों के द्वारा स्थविरों को असंयत, अविरत आदि कहे जाने पर, उन्होंने इसी पद्धति का अनुसरण किया था। उन्होंने किसी भी बात के लिए आगम पाठों की खोज एवं अनुसंधान कर उसे प्रमाणित करने का प्रयास किया। किसी वस्तु के सचित्त-अचित्त के लिए वैज्ञानिक साधनों एवं उनके अनुसंधानों का उन्होंने कभी सहारा नहीं लिया। क्योंकि विज्ञान सचित्त-अचित्त का निर्णय देने में सक्षम ही नहीं है। डॉ० दौलतसिंहजी कोठारी जो एक उच्च कोटि के वैज्ञानिक हुए, उन्होंने स्पष्ट कहा है कि - **"विज्ञान सचित्त अचित्त की परिभाषा से नहीं सोचता। अतएव विज्ञान को किसी वस्तु को सचित्त-अचित्त कहने का कोई अधिकार नहीं है।"** आचार्य प्रवर! आप ही जैन जगत् के ऐसे आचार्य हैं जो अपनी बात को सिद्ध करने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधानों को प्रमुखता देते हैं और आगम पाठों को पीठ देकर उनका मनमाना अर्थ करते हैं।

आगे आप इस विज्ञप्ति अंश में कल्पाकल्प के लिए लिखते हैं। **"सिद्धान्त तो एक ही है कि जो शाकाहार है, शुद्ध भोजन है, जो निर्जीव है, वह साधु के लिए कल्पता है। चाहे काजू हो, चाहे बादाम, चाहे बाजरे की रोटी हो। अचित्त सारा कल्पता है। जो शाकाहार है, भक्ष्य है, अभक्ष्य नहीं है वह सारा कल्पता**

है।'' आचार्य प्रवर आपने तो कल्पाकल्प के लिए अभूतपूर्व निर्णय दे डाला। ऐसा निर्णय आज तक किसी जैनाचार्य ने नहीं दिया। आपके मतानुसार शुद्ध शाकाहारी अचित्त सारा कल्पता है, इसका मतलब यह हुआ कि जैन साधु के लिए आगमकारों ने उद्गम के १६ दोष, उत्पादन के १६ दोष, एषणा के १० दोष कुल ४२ दोष टालकर आहार पानी ग्रहण करने का तथा परिभोगैषणा के ५ दोष वर्जकर आहार पानी भोगने का जो विधान किया, उसे आपने अपने अनुंसधान खोज आदि के द्वारा पूर्ण रूप से उड़ा दिया है। यानी एषणीय और अनैषणीय, सदोष-निर्दोष आदि की परम्परा आपने अपने यहाँ समाप्त कर दी है। यह भी अभूतपूर्व अनुसंधान है। भगवती आदि सूत्रों में अनैषणीय आहार-पानी आदि भोगने के कटु फल तो बताए हैं, पर आचारांग सूत्र (प्रथम) के आठवें अध्ययन के दूसरे उद्देशक में तो यहाँ तक बता दिया है कि साधु के सामने मरणांतिक प्रसंग उपस्थित होने पर भी वह आधाकर्मी, औद्देशिक अनैषणीय आहार पानी का उपयोग न करें। यानी मरना स्वीकार कर ले पर अनैषणीय आहार पानी ग्रहण न करे। जबकि आपने तो एषणीय-अनैषणीय का नामोनिशान ही नहीं रखा। यानी सभी को आरोगने की आज्ञा दे दी है।

भगवती सूत्र में सोमिल पृच्छा में भगवान् ने एवं शुक पृच्छा में थावच्चा पुत्र अनगार ने ''धान्य सरिसव, धान्य कुलत्थ, धान्य मास के सम्बन्ध में शस्त्र परिणत हो जाने मात्र से भक्ष्य नहीं बताया है, किन्तु शस्त्र परिणत होने के बाद एषणीय, याचित और अन्त में लब्ध होने पर ही भक्ष्य बताया है। अतएव आपका यह कथन कि अचित्त शाकाहार सब कल्पता है, आगम से बाधित है। ऐसे पूर्णरूपेण आगम बाधित विषयों की सार्वजनिक घोषणा करना आपकी स्वयं की परम्परा के लिए

घातक ही है। इस प्रकार साध्वाचार एवं आगम विपरीत सार्वजनिक घोषणा करने से पूर्व थोड़ा बहुत तो विचार करना चाहिये था।

आचार की रुचि वाला व्यक्ति कल्पाकल्प की ज़ानकारी के लिए काजू, बादाम आदि संतों को लेना कल्पता है या नहीं, प्रश्न पूछ सकता है। आगमकालीन युग से ही लोगों को कल्पाकल्प की जानकारी देने की साधुओं की परम्परा रही है। जिसे दशवैकालिक के छट्ठे अध्ययन में देखा जा सकता है। प्रश्नकर्त्ता के सामने **"यह सिद्धान्त कहां से आया? सिद्धान्त तो एक ही है जो शाकाहार है, शुद्ध भोजन है, जो निर्जीव है, वह सब साधु के लिए कल्पता है।"** इत्यादि टिप्पणी करना प्रश्नकर्त्ता के आशय को नहीं समझना है। प्रश्नकर्त्ता का आशय यह सजीव है अथवा निर्जीव? उत्तर में आपको कारण बताने चाहिए जो उस वस्तु के लिए आगम में वर्णित है। काजू अग्नि में सीक जाने के कारण शस्त्र परिणत हो जाने से अचित्त होता है। एषणा दोषों से रहित होने पर वह साधुओं को कल्पता है, जबकि बादाम, जौ, बाजरा, गेहूँ, मक्का, ज्वार, मूंग, मोठ, चने आदि की तरह शाकाहार होते हुए भी स्वयं बीज रूप होने से सचित्त होती है। अग्नि आदि से शस्त्र परिणत हो जाने पर तथा एषणा दोषों से रहित होने पर वह कल्पनीय होती है। यही बात पिस्ता, चारोली, किसमिस, मुनक्का, केला आदि के लिए समझनी चाहिए। उत्तर तो प्रश्नकर्त्ता को इस प्रकार का देना चाहिए।

यहाँ प्रश्न कल्पाकल्प का है। कौन साधु क्या खाता क्या नहीं खाता का प्रश्न ही नहीं है। अन्य सम्प्रदायों के साधु साध्वी भी विगय त्यागी, आयम्बिल आदि करने वाले होते हैं, किन्तु विगयों को अकल्पनीय नहीं बताते है, ले नहीं ले, यह उनके त्याग पर निर्भर है,

पर जो चीजें (बादाम, पिस्ता, चारोली, किसमिस, मुनक्का, केला आदि) आगम से सचित्त सिद्ध है, उन्हें अकल्पनीय कहते हैं, जो पूर्ण उचित है। दोष को दोष बतलाना आगमोचित है। इससे ही श्रावकों को शुद्ध आचार की जानकारी होती है। आपका सिद्धान्त की दुहाई देकर, सिद्धान्त विरुद्ध "**विद्युत**" (बिजली) को निर्जीव कहना "**बादाम**" शस्त्र परिणत न होते हुए भी कल्पनीय कहना, आधाकर्म आदि दोष युक्त वस्तुओं को "**अचित्त सारा कल्पता है**" कह कर कल्पनीय बताना। यह क्या है? जो दूषित आहार-पानी ग्रहण करे, यह उनकी इच्छा। किन्तु भरी सभा में एवं समाचार-पत्रों में इस प्रकार सिद्धान्त विरुद्ध प्ररूपणा करने, उसका प्रचार-प्रसार करने से क्या सिद्धान्त का अनुगमन करने वालों के सामने कठिनाई नहीं आयेगी? क्या यह आपका विशेष प्रवचन गलत बात को सही एवं सिद्धान्तानुसार बताकर समाज में भ्रम पैदा नहीं कर रहा है । क्या यह संगत बात है? बादाम आदि सजीव होते हुए भी किस खोज और अनुसंधान से इसे कल्पनीय बताया गया है? क्या यह 'मैं जो मानता हूँ वह सही है, जो मैं नहीं व गलत है।' इसका उदाहरण नहीं है?

विज्ञप्ति अंश नं० ९. :- आचारांग सूत्र की टीका में एक बहुत सुन्दर बात कही गई है। एक मुनि ऐसा है, जो अचेल रहता है, एक मुनि ऐसा है, जो एक वस्त्र रखता है, एक मुनि ऐसा है, जो दो वस्त्र रखता है और एक मुनि ऐसा है जो तीन वस्त्र रखता है। अब एक वस्त्र रखने वाला यह कहे कि दो वस्त्र रखने वाला ढीला है तो यह एकान्ततः मिथ्या बात है। मुनि को ऐसा कहना कल्पता नहीं है। साधना के अनेक प्रकार हैं। कौन-सा रास्ता चुनें? जैनों में और दूसरे भी बहुत से लोग क्रियाकाण्डों में उलझे रहते हैं। उन्हें यह सोचने को

भी समय नहीं है कि अध्यात्म का कैसे विकास करें? विचार नहीं करते, यह उनकी इच्छा है, पर उन्हें इस बात का दोष क्यों दें कि वे अध्यात्म पर कोई विचार नहीं करते? किसी की रुचि तपस्या करने में है, किसी की उपवास करने में है, किसी की रुचि सामायिक करने में है किसी की स्वाध्याय करने में है तो किसी की माला जपने में। अब उन्हें दोषी क्यों कहा जाए? साधना के क्षेत्र में अपनी-अपनी रुचि है।

समीक्षा :- इस विज्ञप्ति अंश में आचार्य श्री आचारांग सूत्र की टीका का उदाहरण देकर जो बात लिखी है। वह बराबर नहीं है। आचारांग सूत्र दूसरे श्रुतस्कन्ध के पिण्डैषणा अध्ययन के ११ वें उद्देशक में सात पिण्डैषणा एवं पाणैषणा के अभिग्रहों के वर्णन के बाद पाठ है "**णो एवं वएज्जा-मिच्छा पडिवन्ना खलु एए भयंतारो अहमेगे सम्मंपडिवण्णे जे एए भयंतारो एयाओ पडिमाओ पडिवज्जित्ताणं विहरंति जो य अहमंसि एयं पडिमं पडिवज्जित्ताणं विहरामि सव्वे वि तेउ जिणाणाए उवट्ठिया अन्नुसमाहीए एवं च णं विहरंति।**" इत्यादि आचार्य प्रवर! टीका से उदाहरण से मूल पाठ अधिक प्रमाणिक माना जाता है। उक्त मूल पाठ में सब वर्णन तप की दृष्टि से किया गया है। तप करने में सभी सरीखे नहीं होते हैं, अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार करते हुए भी भगवान् की आज्ञा में होते हैं। किन्तु जहाँ साधु के मौलिक आचार की बात है, वहाँ पर आगमकार इस प्रकार की बात नहीं कहते हैं। मौलिक आचार तो सभी के लिए समान रूप से अनुपालनीय होता है। साधुत्व की साधना में आध्यात्म के साथ समिति-गुप्ति आदि क्रियायों का पालन भी आवश्यक बतलाया है। आगमकार तो उन्हें आवश्यक कहते हैं। श्रावक व्यापार वाणिज्य करता हुआ भी आराधक हो सकता है। क्योंकि उसने छोटे नियम

ग्रहण किये हैं। इसीलिए उसे दोषी नहीं कहा जाता है। जबकि प्रभु महावीर के सर्व-विरति सभी साधुओं के लिए नियम है कि वे पांच महाव्रत, पांच समिति-तीन गुप्ति आदि का अक्षुण्ण पालन करे। उनका पालन न करने पर वह दोषी एवं प्रभु आज्ञा का विराधक माना जाता है, इनके पालन में प्रभु ने किसी प्रकार की छुट का न तो प्रावधान रखा है, न ही इनमें वैज्ञानिक खोज एवं अनुसंधान से किसी प्रकार का परिवर्तन करने का ही किसी को अधिकार ही दिया है। अतएव आपका उक्त उदाहरण साधु जीवन के आचार-विचार से कोई सम्बन्ध रखता नहीं है, अतः उसे यहाँ फिट करना महत्त्वहीन है।

विज्ञप्ति अंश नं० १०. :- प्रश्न है कल्प और अकल्प का, सचित्त और अचित्त का। यह निर्णय हमारा स्पष्ट होना चाहिए कि सचित्त है या अचित्त? जब सिद्ध हो जाता है कि सचित्त नहीं है तो फिर लें या न लें, करें या न करें, अपनी अपनी इच्छा है। किन्तु सिद्धान्ततः हमें यह समझ लेना है, जिससे भ्रान्ति न रहे। हम जानते हैं कुछ रासायनिक क्रियाएं ऐसी हैं, जिनके बारे में आज वैज्ञानिक जगत में जितना स्पष्ट हुआ है, शायद धार्मिक जगत में उतना स्पष्ट नहीं था। जैन दर्शन में तो ऊर्जा के बारे में बहुत विस्तार से वर्णन है। पर उनके बारे में जैन मुनि ही ठीक से नहीं जानते तो औरों की तो बात ही क्या? इतनी वर्गणाएं हैं। आठ वर्गणाएं और बयालीस वर्गणाएं हैं पुद्गलों की। किस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म वर्गणाए हैं, उनकी जानकारी नहीं है किसी को। यह ध्यान में रहे कि थोड़ा-सा साहित्य पढ़ लेने से इनका पूरा ज्ञान भी नहीं होता। बहुत व्यापक और गंभीर अध्ययन करने पर कुछ सचाइयां सामने आती हैं। इसलिए बहुत स्पष्ट रहे सबके मन में कि जो बहुत अनुसंधान और खोज के बाद निर्णय दिया था गुरुदेव ने

कि बिजली सचित्त नहीं है? अचित्त है, इसलिए चाहे इलैक्ट्रोनिक के उपकरण हों आपके पास, चाहे घड़ी हो या कोई और उपकरण। वहाँ हमारी स्पष्ट धारणा है कि इनका उपयोग कर हम कोई दोष नहीं कर रहे हैं। कोई अग्निकायिक जीव की हिंसा नहीं हो रही है, ऐसा करने में।

समीक्षा :- इस विज्ञप्ति अंश में आचार्यश्री ने कल्प और अकल्प और सचित्त-अचित्त का निर्णय स्पष्ट हो इसके बारे में लिखा- आचार्य प्रवर! इसे कौन इन्कार करता है। वास्तव में कल्पनीय- अकल्पनीय, सचित्त-अचित्त आदि का निर्णय स्पष्ट होना ही चाहिए। पर वे निर्णय वैज्ञानिक खोज, अनुसंधान के आधार पर नहीं, किन्तु आगम पाठों को आगे रखते हुए होने चाहिए। आपने एवं समस्त जैन साधु-साध्वी वर्ग ने जो भी साधना का मार्ग स्वीकार किया है, वह आगम को आगे रखते हुए किया है, न कि वैज्ञानिकों की खोजों के आधार पर। किसी वस्तु के कल्पनीय-अकल्पनीय, सचित्त-अचित्त का निर्णय वैज्ञानिक जगत् की सीमा में नहीं है। इनके निर्णायक तो आगम ही हो सकते हैं। भले ही भौतिकीय में विज्ञान जगत् की स्पष्टताएं धार्मिक जगत् से भी अधिक रही हो, फिर भी साधना क्षेत्र में तो आगम ही मुख्य एवं आगे हैं और रहेंगे। अतः उनके निर्णय ही सर्वोपरि है। कोई थोड़ा साहित्य पढ़े या अधिक, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। साधुता के आचार की गहरी जानकारी हो यह महत्त्वपूर्ण है। "**किं ताए पढियाए कोडिपय पलाल भूयाए! जं एत्तो वि ण जाणंति, परस्स पीडा ण कायव्वा।**" कोई भी अध्ययन क्यों न हो, वह आचार का पोषक एवं आगमों का अनुगमन करने वाला होना चाहिए। बहुत अनुसंधान और खोज पूर्वक "बिजली सचित्त नहीं" का निर्णय हुआ तो वे खोज और अनुसंधान अभी

तक प्रकाश में क्यों नहीं लाए गए? जो बातें आपने इसके बारे में प्रस्तुत कर विशेष विज्ञप्ति जाहिर की वे तो सभी आगम से पूर्णरूपेण बाधित है। जिन तैजस वर्गणा के पुद्गलों को बार-बार बिजली की अचित्तता के लिए इसमें दोहराया गया उनका तो अग्नि बिजली की सचित्तता अचित्तता से कोई लेना देना ही नहीं, फिर कौनसी खोज और अनुसंधान की गई इसकी जानकारी तो समाज को देनी ही चाहिए। दूसरी बात जब बिजली की निर्जीवता का निर्णय आचार्य श्री तुलसी जी के समय ही हो चुका तो फिर इतने वर्षों तक इसे क्यों रोके रक्खा, उनकी मौजूदगी में इसे जाहिर क्यों नहीं किया गया? गहराई में उतर कर एवं आचार्य श्री भीखण जी के आशय को सामने रख कर यदि चिंतन करते कि "बिजली के उपकरणों का उपयोग कर हम कोई दोष नहीं लगा रहे हैं" तो शायद इस तरह की सार्वजनिक विज्ञप्ति प्रसारित ही नहीं की जाती।

विद्युत् उपकरणों का उपयोग करने वाला यदि थोड़ी बहुत भी साधुत्व की रुचि वाला है, तो वह इन साधनों का उपयोग साधु जीवन के लिए योग्य नहीं मानेगा। वह अन्तर हृदय से मानेगा कि विद्युतीय साधन साधक जीवन के गुणों को कमजोर ही नहीं अपितु पूर्णरूपेण नष्ट करने वाला है एवं लौकेषणा बढ़ाने वाला है। जिसके प्रत्यक्ष प्रमाण सामने नजर आ रहे हैं।

आगम में आठ या बयालीस वर्गणा ही नहीं अनन्त वर्गणा बताई हैं। तैजस वर्गणा को सूक्ष्मता, स्थूलता के आधार पर ही अष्टस्पर्शी होते हुए भी सूक्ष्म माना जाता है। जीव रहित वर्गणा तो इन्द्रिय ग्राह्य होती ही नहीं है। सूक्ष्म जीवों के औदारिक शरीर भी इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होते। तो तैजस वर्गणा तो उससे भी सूक्ष्म है। सजीव

तैजस शरीर आहार पचाने में हेतुभूत होने से स्पर्शनेन्द्रिय ग्राह्य हो सकता है। चक्षुग्राह्य कदापि नहीं, उन्हें अग्नि सदृश्य द्रव्य, अग्नितुल्य द्रव्य, अग्नि जैसा द्रव्य कहना तथा उसे बिजली की निर्जीवता के लिए उद्धरित करना महत्त्वहीन है।

विज्ञप्ति अंश नं० ११. :- परम्परा की बात बड़ी विचित्र होती है। मैं तो यह सोचता हूँ कि हमारे जैन विद्वानों और जैन मुनियों को परम्परा के साथ-साथ थोड़ा गंभीर अध्ययन और गंभीर अनुसंधान की बात भी जोड़नी चाहिए। जैनधर्म और दर्शन के इतने बड़े तत्त्व, किन्तु अनुसंधान के अभाव में हम कुछ बता न सकें, यह चिन्तनीय बात है। अब जैसे-जैसे इन पर काम हो रहा है, खोज हो रही है यहाँ के और विदेशी विद्वानों के द्वारा, बहुत सी बातें सामने आ रही हैं। अब लग रहा है कि इतनी बड़ी सचाइयाँ हैं, जो अभी तक हमारे सामने नहीं आई थीं। विश्वविद्यालय की कुलपति सुधामहीजी ने दिल्ली में अनेकान्त पर भाषण माला का आयोजन किया, उस भाषणमाला में पहला भाषण लक्ष्मीमल सिंघवी का था। एक ईसाई विद्वान् जो पादरी था, उसने एक प्रस्ताव रखा कि यह सिद्धान्त इतना ऊँचा है कि अब आपको एक ग्लोबल इंस्टीट्यूट की स्थापना करनी चाहिए, जिससे पूरे विश्व को पता चले कि अनेकान्त कितना महत्त्वपूर्ण है। आवश्यकता है कि हम लोग थोड़ी दिशा बदलें और आज के वैज्ञानिक साधन, आगमिक साधन और अन्य दर्शनों के तुलनात्मक अध्ययन के बाद कुछ ऐसे निष्कर्ष निकालें, स्थापना करें जो सारी मानवजाति के लिए कल्याणकारी हो सकें। केवल परम्परा के नाम पर यह न कहें कि हम ऐसा नहीं मानेंगे। आपकी इच्छा है मत मानो, पर वह दूसरों के लिए प्रमाण नहीं हो सकता। मैं मानूं या नहीं मानूं, पर प्रमाण तो वही होगा, जो युक्तिसंगत, तर्कसंगत और सिद्धान्तपरक है, प्रमाणिक है।

परम्परा की बात अलग है। दो-तीन युवक साथ में जा रहे थे। एक ने पूछ लिया-यह अंगरखा पहन रखा है, यह तो बहुत पुरानी परम्परा है। उसने कहा, यह मेरे कुल की परम्परा है। परम्पराएं चलती है पर सार्थक वही है, जिसकी प्रामाणिकता सिद्ध हो, जो उपयोगी हो, अन्यथा वह मात्र बाधा ही बन कर रह जाती है। फिर पूछा-आजकल तो दाढ़ी और बाल छोटा रखने की परम्परा है। तुमने तो बाल बढ़ा रखे हैं। उसने कहा- यह मेरे कुल की परम्परा है। फिर पूछा- तुम्हारी शादी हुई या नहीं? उसने कहा-'नहीं हुई। यह भी मेरे कुल की परम्परा है। न मेरे बाप ने शादी की, न मेरे दादा ने की।' अब देखें, इस तरह की परम्परा में कितना विरोधाभास आ जाता है। कोरी परम्परा की दुहाई कहां तक देते रहेंगे?

हमें परम्परा का सम्मान करना है, उसे छोड़ना नहीं है, किन्तु उसी परम्परा को, जिसका कोई अर्थ है, जिसकी कोई सार्थकता है। एक आदमी का पिता दिवंगत हो गया। उसका क्रम था कि रोज सवेरे उठकर वह आले के पास जाता था। पुत्र भी गया। पिता क्यों जाता था, आले के पास, पुत्र को पता नहीं, फिर भी वह गया और रोज का उसका यह क्रम बन गया। किसी ने पूछ लिया-"भोजन के बाद तुम आले के पास क्यों जाते हो?" उसने कहा - 'मेरे पिताजी भी जाते थे।' वह बोला-'क्यों जाते थे, वह मुझे पता है। उनके दांत में छिद्र थे। दांतों की सफाई के लिए आले में तिनके रखे थे, उसे लेने के लिए वे वहां जाते थे, किन्तु तुम्हारे लिए वहाँ जाना क्या अनिवार्य है?' वह बोला-'यह मैं नहीं जानता, पिताजी ऐसा करते थे। इसलिए मैं भी ऐसा करूँगा।' यह एक अर्थहीन रूढ़ि है। मात्र निरर्थक परम्परा है।

एक होती है सार्थक परम्परा और एक अर्थहीन परम्परा। सार्थक परम्परा को चलाना बहुत जरूरी है, उसके बिना काम नहीं चलेगा,

किन्तु वह सार्थक परम्परा होनी चाहिए। अर्थहीन परम्परा का भार ढोना कोई बुद्धिमानी नहीं है।

समीक्षा :- इस विज्ञप्ति अंश में आचार्य श्री ने जैन विद्वानों और जैन मुनियों को परम्परा के साथ थोड़ा वैज्ञानिक अध्ययन और अनुसंधान-खोज करने का सुझाव दिया। साथ ही प्रभु के अनेकान्त सिद्धान्त पर विद्वानों के हुए भाषणादि तथा परम्परा के कुछ उदाहरण आदि रखे। इस संदर्भ में सबसे पहली बात तो यह है कि विद्युत् (बिजली) सचित्त तेऊकाय है, इसका सम्बन्ध न तो कोई परम्परा से है, न ही इस पर अनुसंधान एवं खोज की आवश्यकता है। क्योंकि यह सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित है। चतुर्विध संघ के किसी भी सदस्य को जिसकी सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु महावीर की वीतरागता एवं उनके द्वारा प्ररूपित वाणी रूप आगम पर विश्वास है, वह तो बिना किसी खोज एवं अनुसंधान के आगम में वर्णित विद्युत् (बिजली) को बिना किसी ननूनच के सचित्त तेऊकाय स्वीकार कर लेगा। पर जिन्हें आगमों पर विश्वास नहीं, जिन्हें अपनी अपनाई गई प्रवृत्ति को निर्दोष सिद्ध करना है, वह अवश्य खोज और अनुसंधान करके उसे अपने हक में प्रमाणित करने का प्रयास करेगा जैसा कि इस विज्ञप्ति में किया गया है।

दार्शनिक सिद्धान्तों की अन्य दर्शनों के साथ तुलना करके जैन दर्शन की विशेषता बताई जा सकती है। जैसा कि सिद्धसेन, समन्तभद्र आदि ने किया है। आचार-सम्बन्धी प्रश्न में अन्य दर्शनों के साथ तुलना की आवश्यकता न होकर जैन आगमों विशेष कर चरण-करणानुयोग का गहरा ज्ञान एवं निरवद्यता की गहरी रुचि आवश्यक है। शुद्ध आचार, सिद्धान्त परक होने के साथ-साथ युक्ति संगत एवं तर्क संगत होता ही है, इसीलिए वह प्रमाण भूत होता है। शुद्ध

आचार-विचार के निर्णय वैज्ञानिक साधनों से नहीं किये ज़ाते, आगमों के तलस्पर्शी ज्ञान से किये जाते हैं। विद्युत् (बिजली) को सचित्त मानने की परम्परा आगम की स्पष्ट परम्परा है।

जैन दर्शन स्याद्वाद-अनेकान्तवाद सिद्धान्त को अवश्य मान्य करता है, पर वह सम्यक् हो और सिद्धान्त के अनुकूल हो, तभी मान्य हो सकता है अन्यथा वह मिथ्या होता है और अमान्य होता है। जहाँ जिनेश्वर भगवंत के धर्मोपदेश से किंचित् भी असहमति हो, वहाँ इसकी उपेक्षा ही रहती है। जमाली आदि निह्नव एक को छोड़कर सभी बातों में सहमत थे, केवल एक विषय की असहमति एवं विरोध के कारण मिथ्यादृष्टि एवं संघ बाह्य ही माने गए। हाँ तो अनेकान्तवाद का सिद्धान्त सभी प्रकार से मान्य नहीं होता है। यदि सभी अनेकान्तवाद प्रभु को मान्य होता तो प्रभु सकडालपुत्र के नियतिवाद का खण्डन कर पुरुषार्थवाद का मण्डन नहीं करते और कुण्डकोलिक के नियतिवाद के खण्डन की सराहना नहीं करते, जबकि सम्यक् नियति को तो स्वीकार किया ही गया है। अतएव अनेकान्तवाद का सिद्धान्त ग्लोबल इंस्टीट्यूट में स्थापित नहीं होता बल्कि प्रभु द्वारा निर्देशित सिद्धान्तों की कसौटी पर खरे उतरने पर ही वह मान्य होता है।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त अटल, ध्रुव, नित्य, शाश्वत और सत्य होते हैं तथा तीनों ही काल में अपरिवर्तित होंगे। अंगरखा पहनने, बाल बढ़ाने, शादी नहीं करने, आले के पास जाने आदि अयथार्थ-अर्थहीन परम्पराए के उदाहरणों का सर्वज्ञ प्रभु के शाश्वत सिद्धान्त के साथ सम्बन्ध जोड़ना, कौनसी बुद्धिमानी कही जा सकती है? अर्थहीन परम्पराओं का उदाहरण देकर आगम सिद्ध, सार्थक, संयम विकास में उपयोगी परम्परा का हनन करना भगवान् के

तीसरे पद पर आसीन आचार्य के लिए शोभनीय नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के अर्थहीन अयथार्थ उदाहरण तो आपके अंध भक्त जो **'ऊँट बिल्लाया ले गई'** को तहत्ति करके स्वीकार करने वाले ही भक्त कर सकते हैं।

आप उदाहरण में लिखते हैं 'किसी को पूछा-तुम्हारी शादी हुई या नहीं? उसने कहा-'नहीं हुई। यह भी मेरे कुल की परम्परा है। न मेरे बाप ने शादी की, न मेरे दादा ने की।' प्रश्न है जब उसके बाप और दादा ने शादी नहीं की तो फिर वह कहाँ से आ गया? बंधुओ! इस तरह के अर्थहीन बेतुके बोगस उदाहरण सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग प्रभु महावीर के सिद्धान्त के साथ जोड़ना क्या वीतराग वाणी का मखौल उड़ाना नहीं है?

महत्त्वहीन बात को इतना महत्त्व देकर विशेष प्रवचन जाहिर करना कैसे उचित कहा जा सकता है? आगम पाठ की अनदेखी कर विद्युत् (बिजली) को अचित्त सिद्ध करने में साधु समाज में आपको कौन सा चारित्रिक विकास नजर आया? चारित्रिक हानियाँ तो स्पष्ट दिख ही रही है। विद्युत् प्रयोग से धर्मस्थानों में पंखों के उपयोग ने वायुकायिक हिंसा को बढ़ावा देकर चारित्रिक स्तर गिराया है। टी. वी., रेड़ियो, विडियों केसेट आदि का साधुओं के द्वारा देखे जाने से इन्द्रिय निग्रह में कमी आई है। जहाँ आगमकार ऐसे दृश्य देखने के लिए एक पांव (कदम) रखने पर भी चौमासी प्रायश्चित्त बताते हैं। वहाँ टी. वी. आदि के दृश्यों को देखने में संतों द्वारा घंटों व्यतीत कर दिये जाते हैं। इस प्रकार विद्युत् उपकरणों का उपयोग साधु जीवन के लिए द्रव्य और भाव दोनों तरह से रसातल की ओर ले जाने वाला है। ऐसे महत्त्वहींन मुद्दे को इतना महत्त्व देकर जाहिर कर तटस्थ जैन विद्वानों के सामने अपनी प्रतिष्ठा को कम किया है।

विज्ञप्ति अंश नं० १२. :- बहुत सारे सिद्धान्त ऐसे हैं, जिनकी आज के वैज्ञानिक युग में समीक्षा करना बहुत जरूरी हो गया है। कर्म का सिद्धान्त, जीव का सिद्धान्त, यह सब बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। बहुत वर्ष पहले की बात है। हम भीनासर में थे। रात्रि में एक प्रोफेसर आया। था तो तेरापंथी श्रावक ही। पर वह वैज्ञानिक सोच वाला व्यक्ति था। उसने आकर कहा-'आप लोग जीव की बात बतलाते हैं, पर जब तक बायोलोजी का गहरा अध्ययन नहीं होगा, तब तक आपकी बात चलेगी नहीं।' मैंने कहा-तुम्हारी बात ठीक है। हम दोनों का तुलनात्मक अध्ययन कर रहे हैं।' हमने उसे सारी बात बताई। उसने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा - 'यह अच्छी बात है। ऐसा होना ही चाहिए।' आज क्लोनिंग की बात सामने आई है। ऐसे में कहां टिकेगा हमारा कर्मवाद और जीववाद। बड़ा विचित्र प्रश्न है। जहाँ आदमी भेड़ और बकरी पैदा कर सकता है और हॉल में ही किसी वैज्ञानिक ने कम्प्यूटर की टैक्नोलोजी का उपयोग करते हुए आदमी को ही कम्प्यूटर बना दिया। जहाँ ऐसी नित नई वैज्ञानिक प्रगतियाँ और खोजें हो रही हैं, वहाँ हमारे धार्मिक जगत के लोग केले के छिलके पर ही अटके रहें, यह कहाँ की युक्तसंगत बात है? कहीं पहुँच नहीं पाएंगे। आज का पढ़ा-लिखा आदमी उनकी बात को मानने के लिए तैयार भी नहीं होगा। हमें बहुत ध्यान देना होगा। अगर आज जैनधर्म की विश्व में दो-चार बड़ी लेब्रोरेट्रियाँ होती, वहाँ नए और पुराने सिद्धान्तों पर प्रयोग और प्रशिक्षण चलते तो नए-नए सिद्धान्तों का विकास होता। तब वह सजीव दर्शन होता। आज तो बिना प्रयोग और खोज के उसे सजीव कहने में भी संकोच का अनुभव हो रहा है। बस, केवल दुहाई देने के सिवाय और भी कुछ हमारे पास नहीं है। हमको चिन्तन करना है कि इस दिशा में क्या किया जाना चाहिए?

मैं बहुत छोटा था, तब यह प्रश्न आता था कि अब साम्यवाद आ गया, ऐसे में कर्मवाद का क्या होगा? मैं बड़े विश्वास के साथ कहा करता था कि चिन्ता की कोई बात नहीं। इससे कर्मवाद की मान्यता झूठी नहीं हो जाएगी। कर्मवाद का सिद्धान्त कायम रहेगा। बड़े हुए तो और भी बहुत से प्रश्न सामने आए और अब यह जीव का प्रश्न सामने है। एक-एक कोशिका के द्वारा नए-नए जीव पैदा करने का, क्लोन का, कृत्रिम गर्भाधान का। पिछले वर्ष क्लोन के प्रश्न पर हमारे साधु-साध्वियों ने कहा - 'हमारी मान्यताओं से इसकी संगत कैसे बैठेगी?' मैंने कहा - चिन्ता की कोई बात नहीं। हमारी खोजें और अनुसंधान जो इस दिशा में चल रहे हैं, कोई समाधान अवश्य देंगे। हम इन विधियों को पहले से जानते हैं। एक जैन ग्रन्थ था **''जोणी पाहुड़''**। पूर्व का एक अंग है-**'जोणी पाहुड़'**। उस ग्रन्थ में सचित्त द्रव्यों की, वस्तुओं की योनियाँ वर्णित हैं। इसी आधार पर आचार्य सिद्धसेन ने सेना का निर्माण किया था। जब राजा पर विरोधी सेना ने आक्रमण कर दिया तो असहाय राजा सिद्धसेन के पास आकर बोला- 'अब आप ही कोई उपाय करें।' सिद्धसेन ने इसी विधि के आधार पर तालाब से घुड़सवार पैदा कर दिए। आक्रमणकारी सेना भाग गई। विधान है कि योनिप्राभृत के सिद्धान्त का पारायण रात्रि के उस प्रहर में हो, जब कोई सुन न पाए। आचार्य एक बार रात्रि में शिष्य को पढ़ा रहे थे। रात्रि में बारह बजे के बाद कोई व्यक्ति आ गया। वे बता रहे थे कि अमुक प्रयोग किया जाए तो तालाब में मछलियां ही मछलियां पैदा हो जाएंगी। उसने सुन लिया। दूसरे दिन देखा गया कि तालाब में मछलियां ही मछलियां हो गई हैं। प्रश्न हुआ कि यह कैसे हो गया? पता चला कि किसी ने उस विधि को सुन लिया है।

क्लोन की बात हमारे लिए कोई चिन्ता की बात नहीं है। पर सब विषयों में हमारा ज्ञान, खोज, रिसर्च होनी चाहिए। सिर्फ परम्परा के आधार पर कोई समाधान नहीं प्राप्त होगा। हमारे सामने ऐसे बहुत सारे प्रश्न आते हैं, इसलिए हमने व्याख्यान में इसका उल्लेख किया, जिससे सबको ज्ञात रहे।

समीक्षा :- इस सम्पूर्ण विज्ञप्ति अंश में आगे पीछे आचार्य श्री ने प्रभु महावीर के सिद्धान्त को वैज्ञानिक की कसौटी पर कसने, इसके लिए दो-चार बड़ी लेब्रोरेट्रियाँ स्थापित करने, पुराने सिद्धान्तों को संशोधित करके नए-नए सिद्धान्तों को विकसित करने की बात कही है। इससे स्पष्ट है कि आपका विश्वास सर्वज्ञों के सिद्धान्तों (आगमों) से हटकर वैज्ञानिक आविष्कारों की ओर चला गया है। इसीलिए आप इस तरह की बातें करते हैं। जिन्हें सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग प्रभु के सिद्धान्तों पर विश्वास है, जिन्हें आगमों का तलस्पर्शी ज्ञान है, वह छाती ठोक कर कह सकता है कि विज्ञान की कोई ऐसी तर्क नहीं जिसका समाधान आगम वाणी से नहीं किया जा सकता है। हाँ जो वैज्ञानिकता के बहाव में बह चुके हैं, जिनकी जिनवाणी से श्रद्धा हट चुकी हैं, वे अवश्य कहते हैं कि वैज्ञानिक विकास के साथ भगवान् के सिद्धान्तों में संशोधन अथवा परिवर्तन होना चाहिए तथा सिद्धान्तों के परीक्षण के लिए दो चार लेब्रोरेट्रियाँ स्थापित होनी चाहिए आदि।

आज के वैज्ञानिक युग में आगमों एवं आगमों के व्याख्या साहित्यों का गहरा तलस्पर्शी अनुप्रेक्षा पूर्वक ज्ञान आवश्यक है। जिससे जैन सिद्धान्तों की जीव, कर्म आदि मान्यताओं को आधुनिक विद्वानों को समझाया जा सके। जैन सिद्धान्तों की तलस्पर्शी जानकारी होने पर क्लोनिंग की बात कोई बाधक नहीं बनती। कर्मवाद एवं

जीववाद टिकने में कोई बाधा नहीं आती। क्लोनिंग का विश्लेषण ध्यान में लेने पर आगमानुसार उसे घटाया जा सकता है। यह तो आगमों में आता ही है कि प्रथम समय में ग्रहण किया हुआ सर्वबंध (या ओज) आहार जीवन पर्यन्त रहता है एवं पूरे शरीर में व्याप्त रहता है। शरीर का कोई अवयव "क्लोन" तैयार करने में लेंगे, तो उसमें भी वह प्रथम समय का आहार व्याप्त तो रहेगा ही। वैज्ञानिक साधनों से उसका विश्लेषण कर मूल शक्राणु रक्ताणुओं को विश्लेषित कर दिया जाता है। फिर परखनली (टेस्ट ट्यूब) से पूरी गर्भ संधारण क्रिया करवाई जाती है। जिससे योग्य योनि बन जाने से गर्भ में आकर जीव कर्मानुसार उत्पन्न होता है। वैसी ही उस परखनली में जीव के शरीर का विकास होकर पूर्व शरीर जैसी जीव सहित प्रतिकृति तैयार हो जाती है। उसे ही क्लोन कहा जाता है। जिस प्रकार पैदा होने में कर्मवाद और जीववाद टिकने में बाधा नहीं आती है, वैसे ही क्लोन में भी वही प्रतिक्रिया होने से जीववाद और कर्मवाद टिकने में कोई बाधा नहीं है। विज्ञान तो अपनी खोजें करता रहता है। ज्यों-ज्यों नई खोजें होती रहती है, त्यों-त्यों पुरानी खोजें परिवर्तित अथवा अमान्य घोषित कर दी जाती है। विज्ञान से अधिक तो जैन आगमों के अश्रद्धालु जैन विद्वान ही बावेला मचाते हैं। आगमों के साथ संगति बिठाने के स्थान पर आगमों की विसंगति बताने एवं कहां टिकेगा हमारा कर्मवाद और जीववाद ऐसी श्रद्धाहीन बातें अपने प्रवचन में करते रहते हैं। जब मानव के चन्द्रलोक पर पहुँचने की बातें अखबारों की सुर्खियों में थी, तब जैन विद्वानों ने आगमों पर कम छीटाकसी नहीं की थी। किन्तु अब उन्हीं अखबारों में (राजस्थान पत्रिका १४-१०-२००१ क्या मनुष्य चन्द्रलोक पर उतरा था?) चुनौती के स्वर में यह कहा गया कि

वास्तव में मानव चन्द्रलोक पर गया ही नहीं था। वह तो मात्र प्रयोगशाला में ही फिल्माया गया करिश्मा था। वैज्ञानिक जगत् में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए अमेरिका के द्वारा यह सब किया था। अतः जैन श्रद्धालुओं को कोई भी नई बात सुनकर आगमों पर आक्षेप नहीं देना चाहिए।

जैन साधु श्रावकों में आगमों की जानकारी एवं तलस्पर्शी ज्ञान में कमी आई हैं। आगमों का गंभीर अवगाहन पूर्वक श्रद्धा सहित ज्ञान बढ़ाने की प्रयोगशालाएं (लेब्रोरेट्रियां) होने से तो जैन दर्शन की गहरी जानकारी बढ़ सकती है, किन्तु भौतिकी प्रयोगशालाओं की तरह यदि विश्व में दो चार या इससे भी अधिक प्रयोगशालाएं बना ली जायेगी, वे जैन दर्शन पर कुठाराघात करने वाली ही होगी। क्योंकि जैन दर्शन आध्यात्मिक दर्शन हैं। अध्यात्म को उन प्रयोगशालाओं में विकसित नहीं किया जा सकता। कुछ पौद्गलिक चीजें (मन, लेश्यादि) वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में सिद्ध हो ही रही है। जैन दर्शन इनका सहयोग ले सकता है। उसके लिए अलग प्रयोगशालाओं की आवश्यकता नहीं रहती, आवश्यकता है चतुर्विध संघ में आगमों के गहरे ज्ञान की। नये-नये सिद्धान्तों का विकास नहीं करना है। किन्तु आगम प्रतिपादित सिद्धान्तों को समझना है। आगम प्रतिपादित सिद्धान्तों को समझ लेने पर ऐसा कहने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी कि - ''जहाँ ऐसी नित नई वैज्ञानिक प्रगतियाँ और खोजें हो रही है, वहाँ हमारे धार्मिक जगत् के लोग केले के छिलके पर ही अटके रहे, यह कहां की युक्ति संगत बात है? कहीं पहुंच नहीं पायेंगे। आज का पढ़ा लिखा आदमी उनकी बात को मानने के लिए तैयार भी नहीं होगा।'' क्योंकि आगमों का तलस्पर्शी ज्ञान होने पर उन खोजों का आगमों के आधार से प्राभाविक

उत्तर दिया जा सकेगा। आगमों का गहरा अध्ययन होने पर उसे सजीव कहने में कुछ भी संकोच का अनुभव नहीं होगा। तब दुहाई न देकर वास्तविकता को स्थापित किया जा सकेगा। कर्म सिद्धान्त, जीव सिद्धान्त आगमों में इतने समीक्षित हो गये हैं, उन्हें जान लेने पर वैज्ञानिक युग में नई समीक्षा की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। जैन दर्शन का अनुशीलन पूर्वक गहरा ज्ञान नहीं होने से ही ये सब समस्याएं आ रही है। जैन तत्त्वज्ञान में ऐसी कोई वस्तु है ही नहीं, जिसका समाधान न हो। वर्तमान में जैन आगमों के नष्ट हो जाने से कितना ही तत्त्वज्ञान उपलब्ध नहीं है। अन्यथा ऐसा कोई भी विषय नहीं है, जिसका जैन तत्त्वज्ञान में समाधान न हो।

जैन आगमों में युगल क्षेत्रों का एवं युगल काल का वर्णन हैं। क्षेत्र काल की वैसी समानता (साम्यवाद) में भी कर्मवाद में कोई बाधा नहीं आई तो आधुनिक साम्यवाद तो वैषम्य से भरा पड़ा है। उसके सामने तो 'कर्मवाद का क्या होगा' का प्रश्न ही नहीं ठहरता? इसी प्रकार जिन कोशिका के द्वारा नये जीव पैदा करना, क्लोन, कृत्रिम गर्भाधान इत्यादि अनेक अविष्कारों का समाधान उपलब्ध आगमों से भी किया जा सकता है। सिद्धसेन के सेना निर्माण से क्लोन की संगति बैठाना, उससे अधिक उचित संगति ऊपर बताई गई हैं, क्योंकि क्लोन की प्रक्रिया उपर्युक्त प्रकार से सुनी जाती है। योनि प्राभृत की प्रक्रिया से तो सम्मूर्च्छिम (असंज्ञी) जीवों की उत्पत्ति ही की जा सकती है। निशीथ चूर्णि में तालाब से घुड़सवार पैदा करने का वर्णन नहीं होकर सरसों से सेना पैदा करने का वर्णन हैं तथा तालाब में मछलियाँ पैदा करने का वर्णन नहीं होकर भैंसे पैदा करने का एवं दृष्टिविष सर्प पैदा करने का वर्णन है। प्रभावक चारित्र में भी

स्वर्णसिद्धयोग और सर्षप मंत्र (सैन्य सर्जन की विद्या) ये दो विद्यायें चित्रकूट स्तंभ से प्राप्त होना बताया गया है। योनि प्राभृत का पारायण रात्रि में ही हो, ऐसा विधान निशीथ चूर्णि में देखने में नहीं आया है।

जैसे अन्यान्य विषय आगमों के आधार से खोजे जाते हैं, आगमों से उनकी संगति बिठाई जाती हैं, इनकी कोई परम्परा नहीं होती। परम्परा तो आचार एवं आचार के नियमों का दृढ़ता से पालन करने की होती है। विद्युत् की सचित्तता की भी मात्र परम्परा न होकर आगमीय सुदृढ़ आधार है। विद्युत् को अचित्त ठहराने के लिए आगमीय मान्यता को अर्थहीन परम्पराओं के समकक्ष रखना एक प्रतिष्ठित आचार्य को शोभा देने वाला नहीं बल्कि प्रतिष्ठा गिराने वाला भयंकर दुःसाहस ही कहा जावेगा।

विज्ञप्ति अंश नं० १३. :- अभी-अभी एक प्रश्न आया कि विद्युत् (बिजली) सचित्त नहीं है तो क्या एक साधु स्विच को चालू कर सकता है या बन्द कर सकता है? यह व्यवहार की बात है। प्रयोग करना या न करना यह हमारे व्यवहार की बात है। हम कितना प्रयोग करें, कितना न करें? अभी नहीं कर सकते। वर्जित है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि विद्युत को हम सचित्त मानते हैं। पर प्रयोग करने में विवेक से काम लेते हैं कि कितना व्यर्थ का काम होता है, कितना सार्थक काम होता है? दो बातें हो गई-सिद्धान्त और व्यवहार। व्यवहार में कितना काम में लेना, यह अलग बात है। व्यवहार में बहुत सारी बातें वर्जित भी होती हैं। यह खाना, यह नहीं खाना। ऐसे में सिद्धान्त को प्रयोग में लाएं तो बड़ी विचित्र बात हो जाती है। सिद्धान्ततः विहित है, पर व्यवहार में बहुत सारी वर्जित है। क्योंकि स्विच को ऑन और ऑफ करने में बहुत सारी समस्याएं पैदा हो जाती हैं। इसलिए

अभी व्यवहार में इसे नहीं लेते। किन्तु सिद्धान्ततः यही बात मान्य है कि विद्युत सचित्त नहीं है।

हम ऐसा नहीं करते, इसलिए यह बात गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए। गलत या सही होने का आधार या तो आगम हैं या दूसरे ऐसे कोई तथ्य, जिनके आधार पर यह मानना पड़े कि यह बात सही नहीं है। अपनी परम्परा निभाओ, किन्तु दूसरों पर आरोपित मत करो कि हम जो कर रहे हैं, वह तुम नहीं करोगे तो गलत होगा। तुम्हारी इच्छा है तो बाजरी की रोटी के अतिरिक्त कुछ मत खाओ। जिस व्यक्ति को जमीन के नीचे पानी देखना है, उसके लिए प्राचीन योग का नियम है कि छह महीने तक बाजरी के सिवाय और कुछ न खाए। तभी वह शक्ति, वह दृष्टि पैदा होती है। यह अपनी साधना है, अपना प्रयोग है। असाढ़ा का एक छोटा-सा बच्चा है। मेरे सामने आया। साधु बनना चाहता है। उसने कहा- मैं मुनि तो बन जाऊँगा, पर मुझे सोगरा चाहिए। गेहूँ का फुलका मिले या न मिले पर सोगरा अनिवार्य रूप से मिलना चाहिए। यह अपनी-अपनी रुचि है, पसंद है। हम किसी की रुचि को प्रतिबंधित या नियंत्रित करना नहीं चाहते। प्रश्न है सिद्धान्त का। सिद्धान्त क्या कहता है? इस पर हमें विचार करना है। इसी आधार पर हमारा निर्णय होना चाहिए।

समीक्षा :- इस विज्ञप्ति अंश में आचार्यश्री विद्युत (बिजली) को निर्जीव ऊर्जा मानते हुए भी स्वीच आदि को चालू न करने के बारे में व्यवहार की जो बात कही एवं जो तर्क दिए वे आपकी दोहरी नीति को उजागर करते हैं। जब आगम वर्णित साध्वाचार के व्यवहारों समिति गुप्तियों को ही नहीं, आचार्य भीखणजी के द्वारा बताये गये आचार व्यवहारों को भी छोड़ दिया गया, तब स्विच चालू बन्द करने,

नहीं करने में व्यवहार की बाधा कैसे आडे आ गई? समझ में आने जैसी बात नहीं है। आप आगम आज्ञा से एवं आचार्य भीखण जी की मर्यादा से कितने दूर चले गये हैं, यह बात आगम पाठी एवं आचार्य भीखणजी के साहित्य को पढ़ने वालों से छिपी नहीं है। जिन शिथिलताओं को मुद्दा बना कर आचार्य भीखणजी गच्छ से अलग हुए, उस समय गच्छ में ऐसी विकृतियाँ नहीं थीं, जैसी आज आचार्य भीखणजी के गच्छ में दृष्टिगोचर हो रही है।

शताधिक साधु साध्वियों का साथ में विहार करना, साथ में रहने वालों से ही प्रायः सभी का आहार पानी ग्रहण करना, गोचरी के वासों (स्थानों) को पहले दिन ही निश्चित करके गृहस्थों को बता देना, राज गोचरी करना इत्यादि बहुत सी ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं, जो आगम विरुद्ध होने के साथ व्यवहार संगत भी नहीं है। क्या आचार्य भीखण जी के द्वारा इन सब व्यवहारों - आचरणों को स्वीकृत किया गया है? लोक मानस पर तेरहपन्थ समाज पर इसका प्रतिकूल असर न हो, इसलिए आप रुके हुए लगते हैं। धीरे-धीरे लोक मानस में विद्युत् की अचित्तता की बात जमने लगेगी तो स्विच को चालू बन्द करने में भी आपको कोई आपत्ति नहीं होगी। लगता तो ऐसा है कि जो संघ साधना की रुचि से हट कर प्रचार एवं लौकेषणा की तरफ अग्रसर हो रहा है उस संघ में आने वाले वर्षों में विद्युतीय चूल्हों से रसोई बनाने न लग जाय, ऐसी आशंका भी बढ़ती जा रही है।

दूसरों के द्वारा स्विच चालू बन्द कराने में तो आरंभ बढ़ता ही देखा जाता है। दूसरे ने स्विच चालू किया। काम पूरा हो जाने के बाद भी दूसरा उपस्थित नहीं होने से वह चलता ही रहेगा, इस से तो व्यर्थ आरंभ बढ़ना ही है। इसी प्रवचन में 'काजू-बादाम साधुओं को देना

कल्पता है। इसके उत्तर में यह सिद्धान्त कहाँ से आया?' इत्यादि कहा गया है और अब इसी प्रवचन में कहा जा रहा है- 'व्यवहार में तो बहुत सारी बातें वर्जित भी होती है। यह खाना यह नहीं खाना। ऐसे में सिद्धान्त को प्रयोग में लाएं तो बड़ी विचित्र बात हो जाती है। सिद्धान्तः विहित है, पर व्यवहार में बहुत सारी वर्जित है।' यह तो दोहरी नीति हो गई। दूसरों की आगमीय मान्यता की बात आवें, तब तो 'यह सिद्धान्त कहां से आया?' और जब अपने ही सिद्धान्त के सामने प्रतिपक्ष आवे तब 'सिद्धान्त को और व्यवहार को अलग अलग कर दे।' बादाम के प्रश्न में भी सिद्धान्त तो पूछा ही नहीं था, आचरण ही पूछा था। आगम मान्यता से दूर हो जाने पर ऐसी कई समस्याएं आती है।

कौन कहता है? 'हम ऐसा नहीं करते, इसलिए यह बात गलत है।' पूरे प्रवचन में 'परम्परा एवं हम नहीं करते, इसलिए गलत है।' इसी बात पर विस्तार से हास्यजनक उदाहरण देकर कटाक्ष किया गया है। इससे तो ऐसा लगता है कि बीदासर की तीन दिनों की हजारों (वादी-प्रतिवादी) के बीच की चर्चा में विपक्ष के तर्क मात्र परम्परा के या हम ऐसा नहीं करते हैं, इनके सिवाय आये ही नहीं होंगे। इसलिए पूरे प्रवचन में विस्तार से इसी का खण्डन किया गया है। पक्ष की दलीलों को काटने के विपक्ष के पास क्या तर्क प्रमाण हैं, यह भी सामने नहीं आया होगा। क्योंकि प्रवचन में उसका कुछ भी उल्लेख नहीं है। एक साधारण कोटि का वकील (विधिवेता) भी न्यायालय में विधिशास्त्र से अपने पक्ष की पुष्टि एवं विपक्षी के तर्कों का खण्डन अपने क्षयोपशमानुसार करता है। वह अपने अभ्यास में न्यायालय में पहुँचने के पूर्व ही तपासता है कि विपक्षी विधि शास्त्र से क्या-क्या तर्क उठा

सकता है, उनका क्या क्या समाधान है? मेरे आधारों के प्रतिपक्ष में उसके क्या-क्या तर्क हो सकते हैं, उसका समाधान भी ढूंढता है। फिर न्यायालय में पहुँचता है। विशेष प्रवचन में तीन दिन की चर्चा का तो उल्लेख किया, किन्तु अपने आधारों की पुष्टि, विपक्ष के आधारों का खण्डन ऐसा कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इससे आगम के जानकारों की दृष्टि में तो आचार्यश्री की प्रतिष्ठा की हानि ही हुई है। पूरा प्रवचन ही ऊटपटांग सा लगता है।

आज जैनेत्तर परम्पराएं छह काया में जीव ही नहीं मानती। बहुत-सी जैन परम्पराएं भी विद्युत् (बिजली) को सचित्त नहीं मानती। कौन उन पर अपने विचार आरोपित कर रहा है? आरोपित करने पर मानने वाला भी कौन हैं? हम तो आगम का नाम लेकर विद्युत् (बिजली) को जो अचित्त बताया जा रहा है, उसे अनुचित कहते हैं। यह आगम और आगमकारों के साथ धोखाधड़ी हुई। क्या आगमों का नाम लेकर अपने विचार दूसरों में आरोपित करने का प्रयत्न इसे नहीं समझना चाहिए? अन्यथा विशेष प्रवचन देने एवं उसे इतना अधिक प्रचारित करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। बालक को सोगरे की तरह आपको विद्युत् पसंद हैं एवं उसके बिना आपका काम नहीं चलता, आप उसका सेवन कर ही रहे हैं, पर आगमों की दुहाई देकर विद्युत् को अचित्त क्यों बता रहे हैं? इसीलिए अनुचित बात को अनुचित बताया जा रहा है। हम किसी को प्रतिबन्धित नहीं कर रहे हैं। किन्तु विज्ञप्ति में जो आगम विरुद्ध, उत्सूत्र प्ररूपणा की गई है, उस से जन समुदाय भ्रमित न हो, उसको मध्य नजर रख कर स्पष्टीकरण किया गया है।

९. उपसंहार

आगम में अंनन्त हेतु और अनन्त अहेतु (कुहेतु) कहे हैं। कुहेतु लगा कर कोई भी मुग्धजनों के अन्तर में अपनी खोटी बात जमा सकता है। जमालि आदि अपनी मिथ्या बात भी लोगों के गले उतार देते थे। गोशालक आदि अन्यतीर्थी भी अपनी खोटी बात जमाने एवं लोगों को समझाने में सफल हो जाते थे। आर्द्रकुमार तो जानकार था, इसलिए उनके चंगुल में नहीं फंसा एवं उन्हें यथार्थ उत्तर देकर निरुत्तर कर सका।

आज के युग में तो दार्शनिक जानकारी की अत्यधिक कमी है। इसीलिए दूसरे को फुसला कर धर्मान्तरण भी कराये जा रहे हैं। आज के लोग धर्म के मर्म तक पहुँचने के इच्छुक नहीं है। आज के लोगों को सुविधाओं से युक्त धर्म चाहिए। इसलिए ऐसे प्रवचन आगम विरुद्ध होते हुए भी लोगों को रुचिकर लगते हैं। आगम का नाम लेकर जब बात कही जाती है। तब तो वह लोगों को बहुत भा जाती है पर आपने आगमों के आधार कितने अप्रामाणिक दिये हैं एवं कितने अनुचित तरीकों से विद्युत् को अचित्त सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसे आम जनता परख नहीं सकती है। अतः उनका भ्रमित होना अवश्यंभावी है।

यदि आगमकारों की दृष्टि में विद्युत् अचित्त होती, तो आगमकार विद्युत् को बादर अग्नि नहीं बता कर, क्रुद्ध मुनि के तेजोलेश्या के पुद्गलों की तरह इसे भी अचित्त, तापक, प्रभासक पुद्गल बता देते पर आगमकारों ने मात्र तेजोलेश्या के पुद्गलों को ही अचित्त प्रकाशक

कहा है। अतः विद्युत् को सचित्त बादर तेऊकाय एवं सूर्यादि विमान, जूगनू आदि को आगमकारों की दृष्टि में सचित्त ही समझना चाहिए।

साधु आहार, उपकरण जो भी ग्रहण करता है, वह मात्र संयम के सहयोगी समझ कर ही ग्रहण करता हैं। इसलिए आगमकारों ने आहार, उपकरणों की मर्यादा निश्चित की है। मर्यादा से अधिक आहार, उपकरण संयम में सहयोगी नहीं होकर प्रमाद, आसक्ति, मोह को बढ़ाने वाले माने गये हैं। साधु आत्म-साधना के लिए ही साधु मार्ग स्वीकार करता है। आत्म-साधना में विद्युत् का कोई उपयोग नहीं है, वह तो आत्म-साधना में विघातक एवं संयमी जीवन को पतन की ओर ले जाने वाला स्पष्ट सिद्ध है। तटस्थता से देखने पर यह प्रतीत हुए बिना नहीं रहता।

आगमकार साधक को असंग और नीसंग होने का उपदेश देते हैं। लोक सम्पर्क से दूर रहना ही साधना के लिए हितावह बताते हैं। विद्युतीय साधन लोकैषणा एवं सुखशीलियापन बढ़ाने वाले होने से उपर्युक्त साधना में विघात ही पहुँचाते हैं। आगमकार तो दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में साधक को उपदेश देते हुए कहते हैं -

सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स णिगामसाइस्स।
उच्छोलणा पहोयस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स॥२६॥

भावार्थ - सुख और साता में आसक्त रहने वाले, साता और सुख के लिए व्याकुल रहने वाले, अत्यन्त सोने वाले, शरीर की विभूषा के लिए हाथ-पाँव आदि धोने वाले उस प्रकार के साधु को सुगति मिलना दुर्लभ है।

इससे विपरीत सुगति किस साधक को मिलती है? इसके लिए बतलाया गया है कि

तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खंतिसंजमरयस्स।
परीसहे जिणंतस्स, सुलहा सुगई तारिसगस्स॥२७॥

भावार्थ - तप रूपी गुणों से प्रधान, सरल बुद्धि वाले, क्षमा और संयम में रत परीषहों को जीतने वाले साधु को सुगति सुलभ है।

कहाँ साधना की आगमोक्त रूपरेखा और कहाँ आज का आचार शैथिल्य? विद्युत् आचार शैथिल्य को बढ़ाने वाली है। यह एक हकीकत है। यदि कोई अपने जीवन में इसे नहीं छोड़ सके तो भी सुज्ञजनों को कम से कम ऐसी खोटी स्थापना तो नहीं करनी चाहिये। शिथिलता की स्थापना करने पर शिथिलता की 'पौ बारह' हो जाती है। वह भी जब एक आचार्य के द्वारा की जाती है, तब तो जिनशासन को बहुत बड़ा आघात पहुँचता है। विशेष प्रवचन में बताये अनुसार आचार्य श्री तुलसीजी ने विद्युत् को अचित्त मान लेने पर भी इस बात का इतना प्रचार नहीं किया था। उनके देहावसान के बाद ऐसी कौनसी परिस्थिति आ गई, जिससे उन्हें विद्युत् को अचित्त मानने की बात को इतनी अधिक (हिन्दी, गुजराती पत्रों में) प्रचारित करने की नौबत आ गई। शिथिलताएं तो अपने आप विषवल्ली की तरह पसर जाती है। उन्हें प्रसारित करने की आवश्यकता नहीं रहती। सुज्ञजनों को उसका प्रसार रोकना चाहिये। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर तो सन्मति तर्क के प्रान्त में कहते हैं -

जह-जह बहुस्सुओ सम्मओय, सिस्सगणपरिवुडो य।
अविणिच्छिओ य समए, तह तह सिद्धन्त पडिणिओ॥ ६६॥

आगम प्रत्यनीकता से बचना ही चाहिये।

वर्तमान युग की अर्द्धशताब्दी में धर्म प्रचार के लिए आधुनिक साधनों का अत्यधिक उपयोग हुआ है, तो भी धर्म प्रभावना बढ़ी नहीं

है। आज से पचास वर्ष पहले जैनों का जो खान-पान, व्यवसाय, रहन-सहन, चाल-चलन था, उसमें इन पचास वर्षों में शोधन नहीं होकर गिरावट ही आई है। अधिक लोगों तक धर्म पहुँचाने पर भी उनमें धार्मिकता नहीं बढ़ी हैं। जैनत्व में निखार आने के स्थान पर जैनत्व धूमिल हुआ है। नये जैनी बनने के स्थान पर पुराने जैनी टूटे हैं। धर्मान्तरण भी किया है। इसमें साधुओं का आचार पतन, कथनी करणी में विषमता, साधुओं द्वारा साधना मार्ग को छोड़ कर आधुनिक साधनों की तरफ आकर्षित होना भी एक प्रमुख कारण है। विद्युत्तीय साधनों का उपयोग प्रारंभ होने के बाद आचार शैथिल्य द्रुतगति से बढ़ा है। आज भी इस बात को दृढ़ता से कहने में संकोच नहीं होता कि - यदि साधु विद्युत्तीय साधनों का उपयोग करना नवकोटि से बन्द कर दें एवं आगमानुसार अपने आचरण को सुधार दें, तो जैन संघ का पतन, उत्थान में बदलते देर नहीं लगे। नवयुवक एवं भौतिकी के पढ़े लिखों की भी धर्म पर श्रद्धा बढ़ते देर नहीं लगे। लोगों पर श्रद्धा प्रचार से नहीं, आचार से जमाई जाती है। साधनामय जीवन से जमाई जाती है। इस बात से आदरणीय भीखणजी अच्छी तरह परिचित थे। बड़े बड़े मंत्र-तंत्र के जानकार यतियों के होते हुए भी लोंकाशाह की तरफ लोगों का आकर्षण उनके आचार के कारण ही बढ़ा था।

सभी दृष्टियों से साधना जीवन में विद्युत् का उपयोग साधना को कमजोर करने वाला ही नहीं, अपितु पूर्ण रूपेण नष्ट-भ्रष्ट करने वाला है। आज जो साधक विद्युत उपकरणों का उपयोग कर रहे हैं उनका साधना जीवन चौपट हो चुका है। यह सूर्य के प्रकाश की भांति सामने स्पष्ट-दृष्टिगोचर हो रहा है।

अंत में विद्युत् (बिजली) बादर तेऊकाय है। इसके लिए

लेखमाला के प्रारंभ में आगम के आधार दे दिये गये थे। पुनः संक्षिप्त में यहाँ उद्धरित किये जा रहे हैं -

१. प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में बादर अग्निकाय के अनेक प्रकारों में एक प्रकार विद्युत् (बिजली) भी बतलाया गया है। इसके लिए मूल पाठ यह है-

से किं ते बायर तेउक्काइया? बायर तेउकाइया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा - इंगाले (अंगारे), जाला (ज्वाला), मुम्मुरे (मुर्मुरा-मींगनों की आग) अच्चि (लपटें) अलाए (मशाल की आग), सुद्धागणी (लोह-पिण्ड आदि में व्याप्त निधूर्म अग्नि) उक्का (उल्का अर्थात् चिनगारियां) विज्जु (विद्युत्) असणि (बादलों में चमक के साथ होने वाला प्रकाश) णिग्घाए (भयंकर शब्द के साथ उत्पन्न आग), संघरिस-समुट्ठिए (संघर्ष से उत्पन्न आग) सूरकंत मणि णिस्सिए (आतशी शीशे आदि से उत्पन्न आग), जेयावण्णे तहप्पगारा (और जिनका वर्णन नहीं किया जा सका ऐसे अन्य अनेक प्रकार के बादर तेउकाय जीव हैं)।

२. उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३६ की गाथा नं० १११ में बादर अग्नि में विद्युत् शब्द का उल्लेख है। गाथा इस प्रकार है -

उक्का विज्जू य बोधव्वा, णेगहा एवमायओ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया॥१११॥

भावार्थ - उल्कापात की अग्नि और विद्युत् की अग्नि अर्थात् बिजली इस प्रकार अग्नि के अनेक भेद जानने चाहिए। वे सूक्ष्म अग्निकाय के जीव, अनानात्व-नाना भेद-रहित एक ही प्रकार के कहे गये हैं।

३. 'अभिधान राजेन्द्र' कोष पृ० २३४७ पर 'तेऊकाय' शब्द की व्याख्या में 'पिण्डनिर्युक्ति', 'ओघनिर्युक्ति', आवश्यक मलयगिरि,

कल्प-सुबोधिका, बृहत्कल्पवृत्ति के उद्धरण दिये हैं, जिसमें अग्निकाय तीन प्रकार की बतलाई है - १. सचित्त २. मिश्र और ३. अचित्त।

अचित्त अग्निकाय में मात्र अग्निकाय के मुकेलक यानी अग्नि से पक कर अचित्त हुई वस्तुएं राख, कोयला आदि ही लिए गए हैं। **अचित्त की नामावली में बिजली का नाम नहीं है।**

४. श्री भगवती सूत्र श० ५, उ० २ के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि केवल सचित्त अग्नि के मृत-शरीरों को ही अचित्त अग्नि कहा है, बनावटी विद्युत आदि को नहीं।

५. भगवती श० ७, उ० १० में अचित्त प्रकाशक, तापक पुद्गल में केवल क्रोधाभिभूत साधु की तेजोलेश्या को लिया है, परन्तु बिजली को नहीं लिया।

६. सूयगडांग के दूसरे श्रुतस्कन्ध तीसरे अध्ययन में उल्लेख है कि-त्रस और स्थावर प्राणियों के सचित्त तथा अचित्त शरीरों में पृथ्वी, अप्, तेऊकाय आदि रूपों में, जीव पूर्वकृत कर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि बेटरी, दियासलाई और तांबे के तारों में सचित्त तेजस् उत्पन्न हो सकती है।

आगम के उक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि जिनागमों में विद्युत् (बिजली) को बादर तेऊकाय बतलाया गया है। इतने स्पष्ट प्रमाणों के बावजूद आचार्य महाप्रज्ञजी ने सिद्धान्त (आगम) की दुहाई देकर इसे कैसे अचित्त ऊर्जा कहा ? क्या इसे अपने सुखशीलियापन की मान्यता के लिए, आगम पाठों की जानबूझ कर उपेक्षा करना पुष्ट करना मात्र न कहा जाय? नवांगी टीकाकार आचार्यश्री अभयदेवसूरि जी में कितनी सरलता एवं निरभिमानता थी। उन्होंने भगवती सूत्र के प्रथम शतक की टीका पूर्ण करते हुए लिखा है कि -

"इति गुरुगमभंगैः सागरस्याऽहमस्य स्फुटमुपचितजाड्यः पंचमांगस्य सद्यः।
प्रथमशतपदार्थावर्तगर्त व्यतीतो विवरणवरपोतौ प्राप्य सद्धीवराणाम्।"

अर्थात् - भगवती सूत्र सागर के समान गंभीर है एवं इसका प्रथम शतक सागर की खाड़ी के समान है और इसमें वर्णित पदार्थ समुद्र में भँवर के समान है। मेरी बुद्धि में बहुत बड़ी जड़ता है। मेरे लिए इससे पार होना कठिन है। मुझ में ऐसी शक्ति कहाँ है कि मैं इससे पार पा सकूँ। फिर भी गुरुगम और पूर्वाचार्यों के विवरण (चूर्णि और अवचूरि) रूपी नौका का अवलंबन लेकर मैंने यह प्रयास किया है।

उपरोक्त उद्‌गारों में आचार्यश्री की सरलता एवं निरभिमानता प्रकट होती है। टीकाकार के सामने उलझनें भी बहुत थीं। उन्होंने अपनी कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए स्थानांग सूत्र की टीका के अंत में लिखा है कि -

सत्सम्प्रदायहीनत्वात्, सदूहस्य वियोगतः।
सर्वस्वपरशास्त्राणामदृष्टेरस्मृतेश्च मे॥१॥
वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धितः।
सूत्राणामतिगाम्भीर्यान्मतभेदाच्च कुत्रचित्॥२॥
क्षूणानि संभवन्तीह, केवलं सुविवेकिभिः।
सिद्धांतानुगतो योऽर्थः, सोऽस्माद् ग्राह्यो न चेतरः॥३॥
शोध्यं चैतज्जिने भक्तैर्मामवद्‌भिर्दयापरैः।
संसारकारणाद् घोरादपसिद्धान्तदेशनात्॥४॥ आदि

अर्थात् - सत्सम्प्रदाय (परम्परा) की हीनता से, सतर्क के वियोग से, सभी स्वपर शास्त्रों का अवलोकन नहीं होने एवं स्मृति में नहीं रहने से, वाचना की अनेकता से, पुस्तकों में अशुद्धियाँ होने से, सूत्रों के अति गंभीर होने से और मतभेद होने के कारण इस टीका में

त्रुटियों का रह जाना संभव है। इसलिए विवेकवान् पुरुषों से निवेदन है कि वे इस सूत्र के उसी अर्थ को मानें जो सिद्धांत के अनुरूप हो। सिद्धान्त विरुद्ध अर्थ को नहीं माने। दया में तत्पर ऐसे जिनेश्वर के भक्त पुरुष, संसार के घोर कारणभूत ऐसे अपसिद्धांत-उत्सूत्र प्ररूपणा से रक्षा करते हुए इस व्याख्या की शुद्धि करें।

बंधुओ! कहां आगम मनीषी नवांगी टीकाकार आचार्य अभयदेव सूरिजी की सरलता, निर्भिमानता एवं उत्सूत्र प्ररूपणा का भय जो उनके उक्त उद्‌गारों से परिलक्षित हो रहा है और कहाँ आचार्य महाप्रज्ञजी की आगम पाठों की खुलम-खुली उपेक्षा एवं अवमानना। आगम में जहाँ विद्युत् (बिजली) को नामोल्लेख पूर्वक बादर अग्निकाय निरूपित किया गया है, जो विद्युत् (बिजली) अग्नि का महापुंज, यानी साधारण अग्नि से भी महाभयंकर, जिसके स्पर्श मात्र से पंचेन्द्रिय जीवों की घात हो जाती है, जिसके ताप से टाटा आदि के कारखानों में लोहे को पानी बना दिया जाता है, ऐसे अग्नि महापूंज के लिए आप अपनी विज्ञप्ति में पूर्णदृढ़ता एवं निश्चयकारी भाषा में बिना किसी संकोच एवं संशय के निर्जीव ऊर्जा लिखते हैं, यह कैसी विडम्बना? आप उसके लिए लिखते हैं -

१. यह सारा निर्णय हो गया। इस निर्णय के आधार पर यह घोषणा गुरुदेव ने कर दी कि बिजली हमारी दृष्टि में अचित्त है। निर्जीव है। शास्त्र के अनेक आधारों पर यह सिद्ध हो गया कि बिजली जीव नहीं मात्र ऊर्जा है। तेजस वर्गणा के पुद्‌गल है। इसलिए निर्जीव है।

२. हमने चिंतन किया, खोज की अनुसंधान किया, प्रमाण ढूंढे और इतने प्रमाण उपलब्ध किए आगम के, जिसके आधार पर यह स्थापना करने में हमें कोई संकोच नहीं हुआ। यह संशय में नहीं किया

कि अचित्त है या नहीं? अनुसंधान के आधार पर अच्छी तरह निश्चित हो गया कि-यह मात्र पुद्गल है, ऊर्जा है, एक शक्ति है, अग्निकाय जीव नहीं।

आचार्य प्रवर! आपने निश्चयकारी भाषा में लिखा कि - शास्त्र के अनेक आधारों पर यह सिद्ध हो गया। आगम के इतने प्रमाण उपलब्ध किये जिनके आधार पर आपको विद्युत् (बिजली) को मात्र ऊर्जा स्थापित करने में कोई संकोच नहीं हुआ। पहली बात तो जैन साधु को निश्चयकारी भाषा बोलने का प्रभु ने निषेध किया है। दूसरी बात आपके पास आगम (शास्त्र) के जब इतने प्रमाण उपलब्ध हो गए तो उन प्रमाणों को मंजुषा में बंद करके क्यों रखें? ज्यादा नहीं तो एक दो प्रमाण तो आपको अपनी विज्ञप्ति में उद्धरित करने चाहिये थे कि अमुक अमुक आगम पाठ से विद्युत् (बिजली) अचित्त ऊर्जा है। आपने जिन भगवती एवं सूत्रकृतांग का नाम लिखा उन सूत्रों को सम्पूर्ण ढूंढ़ने पर भी इसका कहीं नामोनिशान ही नहीं मिलता है। आवश्यकता थी सूत्र के साथ आपको मूल पाठ को उद्धरित करने की, ताकि उसकी सत्यता प्रमाणित हो सके। आगम पाठ तो विद्युत् (बिजली) को बादर तेऊकाय स्थापित करता है। ऐसे स्पष्ट आगम पाठों की पूर्ण उपेक्षा करते हुए, आगम विपरीत प्ररूपणा करते हुए क्या आपका हृदय कम्पायमान नहीं हुआ एवं लिखते हुए आपके हाथ थर-थर धूजने नहीं लगे? कवि आनंदघन जी ने तो उत्सूत्र प्ररूपणा जैसा कोई पाप ही नहीं बतलाया है। कृपया चिंतन करावें।

अन्त में आपसे निवेदन है कि आप चूंकि प्रभु महावीर के तीसरे पद के उत्तराधिकारी कहलाते हैं। अतएव जब आपने अपनी विज्ञप्ति में आगम (शास्त्र) के अनुसार विद्युत (बिजली) को मात्र निर्जीव

ऊर्जा होने की सार्वजनिक घोषणा की है, तो आपका नैतिक दायित्व बनता है कि आप उन शास्त्र (आगम) पाठों को सार्वजनिक रूप से समाज के सामने रखें अथवा यह घोषणा करे कि विद्युत् (बिजली) शास्त्र के अनुसार तो निर्जीव ऊर्जा नहीं है, पर हमारी यह निजी मान्यता है। इन दो विकल्पों में से एक विकल्प आपको चुनना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य होगा। क्योंकि आपने अपनी विज्ञप्ति में आगम पाठों को खुली चुनौती दे डाली है। यह सम्पूर्ण जैन समाज को जो वीतराग वाणी (आगम) पर विश्वास रखने वाले हैं, उन्हें खेद पहुँचाने वाली है।

यदि आप इन दोनों में से किसी भी विकल्प को न चुन कर कोई समाधान नहीं देते हैं, तो फिर बिना किसी ननूनच के यह स्वीकार माना जावेगा कि आगम में विद्युत (बिजली) को जो बादर तेऊकाय कहा गया है वह पूर्गरूपेण सत्य है एवं आपने जो विज्ञप्ति जारी की है वह मात्र अपनी मान्यता को पुष्ट करने के लिए की है, जो महत्त्वहीन एवं आगम पाठों को उपेक्षित करके की गई है।

आपने आगमों का नाम लेकर अपनी परम्परा को पुष्ट करने के लिए जो विज्ञप्ति जारी की, उससे सामान्य जैन समाज भ्रमित न हो, इसको मध्य नजर रखते हुए हमने आपकी विज्ञप्ति की अनुचितता की समीक्षा की है। समीक्षा करते हुए आगम वाणी को सन्मुख रखा गया है। बावजूद मेरी अल्पज्ञता के कारण अंश मात्र भी कोई विपरीत प्ररूपणा हो गई हो तो अन्तःकरण से "**मिच्छामि दुक्कडं**" देता हूँ। साथ ही मेरी इस समीक्षा से चतुर्विध संघ के किसी घटक अथवा अन्य किसी भी महानुभाव के हृदय को ठेस पहुँची हों तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

ब्यावर (राज.)